मालला-13
चिनार के पत्ते
जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर (कश्मीर)

हिन्दी विश्व की महान् भाषाओं में से है। यह करोड़ों लोगों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं जो इसे दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है, जहां हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गये, और विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जहां विद्वान् लोग अध्ययन करते हैं।

—श्रीमती इन्दिरा गांधी

(प्रथम विश्व-हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन भाषण से)

हिन्दी प्रारम्भ से ही समन्वय और एकता की भाषा रही है । फिर कबीर और नानक, रहीम और मीरा, जायसी और रसखान, सूर और तुलसी, इन सब महान् कवियों का उद्देश्य था—जन-जन तक अपने विचारों को पहुंचाना । इन सबने अधिकांशतः हिन्दी का ही प्रयोग किया, क्योंकि उस समय भी यह भारत के बहुत बड़े भू-भाग की भाषा थी।

—डॉ. कर्णसिंह

(द्वितीय विश्व-हिन्दी सम्मेलन, मारीशस में दिये गये भाषण से)

भारत में अनेक भाषाएं हैं। हिन्दी के प्रेमी यह जानते हैं कि ये सब आपस में बहनें हैं। जितना ही इनमें स्नेह ओर समझ बढ़ेगी, विदेशों में उतना ही हिन्दी को बल मिलेगा और दूसरी भाषाओं और हिन्दी का प्रचार-प्रसार तभी संभव है जब इन्हें सभी लोगों का विश्वास प्राप्त हो और साथ ही हिन्दी-भाषी दूसरी भाषाओं को मान दें।

—श्रीमती इन्दिरा गांधी

(तृतीय विश्व-हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन भाषण से)

नीलजा सीरीज़-13

चिनार के पत्ते

चिनार के पत्ते

संरक्षक

प्रो. लक्ष्मी नारायण सप्रू

सम्पादक

मोतीलाल 'प्रमोद'

जयकिशोरी चौधरी

1987-88

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

श्रीनगर (कश्मीर)

नीलजा-13

प्रकाशक
जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
लाल चौक, श्रीनगर, कश्मीर।

जम्मू-कश्मीर के लेखकों के लेखों का प्रतिनिधि संकलन

मूल्य : तीस रुपये(30.00)

वर्ष : 1987-88

आवरण: जे. मार्टिन

मुद्रक : पाराशर प्रिन्टर्स, 1/11849 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

Neelaja-13 Chinar Ke Patte, Published by J & K Rashtra Bhasha Prachar Samiti, Lal Chowk, Srinagar (Kashmir)

Price : Rs. 30.00

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर (कश्मीर)

के

भूतपूर्व अध्यक्ष

प्रो. काशीनाथ दर

की

प्ररेणादायिनी पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित ।

श्री मोतीलाल 'प्रमोद'

श्रीमती जयकिशोरी चौधरी

लेखक महोदयों के मन्तव्यों से समिति
का सहमत होना कदापि आवश्यक नहीं। —सम्पादक

नीलजा-12, कश्यप भारती, का विमोचन करते हुए
माननीय हकीम हबीब उल्लाह, अध्यक्ष, विधान परिषद्

अपनी बात

नीलजा की यह तेरहवीं तरंग विविध वीचियों को समेटे पाठकों के सम्मुख रखते हुए अतीव हर्ष का अनुभव हो रहा है; यह इसकी अबाध गति का परिचायक है। पिछली तरंगों की तरह ही इसमें हमारे प्रान्त के लेखकों की कृतियों का संकलन प्रस्तुत किया गया है।

इसमें ज़हां संस्कृत और संस्कृति पर निबंध हैं वहां इसमें कश्मीरी भाषा के गूढ़ विषय पर भी प्रकाश डाला गया है; जहां दर्शन के गहनतम तत्त्वों की विवेचना है वहां कहानियों में कश्मीरी वातावरण की भी झलक मिलती है। इसके साथ ही कुछ ऐसे कवियों का प्रसंग भी है जो अपने समय में बड़े विख्यात रहे हैं।

श्री अवतारकृष्ण राज़दान द्वारा लिखित कृति 'श्रीनगरी' नीलजा-11 में दिए गए लेख 'श्रीनगरी' का शेष भाग है; इसमें संस्कृति और इतिहास का संगम है। डॉ० बद्रीनाथ कल्ला के लेख 'कश्मीर में संस्कृत' में इस भाषा का कश्मीर में प्रचार-प्रसार का इतिहास ही नहीं अपितु संस्कृत और कश्मीरी का सम्बन्ध दिखाया गया है। श्री राजेश्वर शर्मा द्वारा लिखित निबंध 'जम्मू की संस्कृति' में विद्वान लेखक ने जम्मू का सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत किया है। श्री मोतीलाल शास्त्री 'पुष्कर' के लेख में कश्मीरी भाषा के उद्‌गम पर शोधपूर्ण सामग्री उपस्थित की गई है। डॉ० भूषणलाल कौल की कृति 'कश्मीरी कविता में राष्ट्रीय एकता के स्वर' में यहां के कवियों में राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीय एकता का स्वर सुनाई पड़ता है। डॉ० बलजिन्नाथ पंडित ने अपने लेख 'कश्मीर में शंकराचार्य' में एक विवादास्पद विषय पर प्रकाश डाला है। 'कश्मीर मण्डल में शक्ति-उपासना' में श्री जानकीनाथ कौल 'कमल' ने कश्मीर में शक्ति की उपासना को बड़ी सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। प्रो० हरिकृष्ण कौल द्वारा लिखी गई कहानी 'अरथी' में जहां कश्मीर की शीत का वर्णन है वहां साथ ही

कई चरित्रों द्वारा समाज पर व्यंग्य भी कसा है। श्री जवाहरलाल कौल द्वारा लिखित 'अन्धी गली' में एक ग्रामीण लड़की की नगर के वातावरण में बदलती प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है। श्री पृथ्वीनाथ कौल 'सायिल कश्मीरी' ने कश्मीरी लोकोक्ति 'शंकर'न मकॅच़' (शंकर की कुल्हाड़ी) तथा इस लोकोक्ति के आधार संत कवि शंकर राज़दान 'शंकर' के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला है। श्री निर्मल विनोद ने अपने लेख 'सु-कविता के पक्षधर' में महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के इस महत्त्वपूर्ण काव्यांग को सोदाहरण प्रस्तुत किया है। पढ़िए कश्मीरज केसर की उत्पत्ति एवं उसका ह्रास-विकास श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' के शोधपूर्ण लेख 'कहानी केसर की' में।

प्रान्त के तथा प्रान्त से बाहर रहने वाले पाठक कश्मीर की साहित्यिक गति-विधि से इस पुस्तक के द्वारा परिचित होंगे—ऐसा विश्वास है।

श्री मोतीलाल 'प्रमोद' तथा श्रीमती जयकिशोरी जी चौधरी को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं जिन्होंने इस पुस्तक का सम्पादन-भार अपने ऊपर ले लिया।

अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ के श्री जगदीश जी शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने सत्परामर्श ही नहीं अपितु मुद्रण आदि कार्य में भी सहायता की है।

जय हिन्द !

माघ प्रतिपदा
4-1-1988

ल०न०स०

विषय-सूची

प्रथम वीची—संस्कृत और संस्कृति

द्वितीय वीची—भाषा आदि

तृतीय वीची—दर्शन आदि

चतुर्थ वीची—कहानियां

पंचमी वीची—विविध

कश्मीर में संस्कृत

(इतिहास के परिप्रेक्ष्य में)

● डॉ. बी. एन. कल्ला

कश्मीर केवल भौतिक पदार्थों के लिए ही विश्व में विख्यात नहीं है अपितु आध्यात्मिकता के लिए भी। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के समन्वय ने इस उपत्यका के गौरव को आज तक स्थिर रखा है। यह आध्यात्मिकता इस सस्यश्यामला तथा उर्वरा भूमि की देन है जिसके फलस्वरूप यहां के आचार्यों— वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्ताचार्य आदि ने समय-समय पर ऐसी अध्यात्मविद्या तथा भारतीय चिन्तन को जन्म दिया जो सबके लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यात्मकविद्या तथा दर्शनिक चिन्तन का केन्द्र शारदापीठ अथवा शारदादेश था जो हजारों वर्षों से जिज्ञासुओं को इस ज्ञान से आप्लावित करता रहता है। इस रूप से यहां के विद्यामठ तथा विद्याकेन्द्र सब के लिए आकर्षण के केन्द्र रह गये। इन केन्द्रों की कीर्ति सारे एशियाद्वीप में फैली हुई थी। यही कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्य एशिया तथा चीन से महान विभूतियां आकर यहां के धुरन्धर आचार्यों से ज्ञान-गंगा का अमृत पीकर अमर हो जाते थे। इन विदेशी महान विभूतियों में कुमारजीव तथा ह्वेनसांग के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केन्द्र रह चुका है। यहां के विद्यामठों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना 'राजतरंगिणी' में इस प्रकार किया है :—

विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुम सहिमं वयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ।।

यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाये—संस्कृत तथा कश्मीर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत को कश्मीर से कश्मीर को संस्कृत से अलग-थलग करना संभव नहीं है। इसने यहां जन-जीवन को प्रभावित ही नहीं कर दिया है अपितु जन-मानस पर अमिट छाप भी डाल दी है। वस्तुत: संस्कृत के प्राचीन गौरव ने ही कश्मीर की कीर्ति-पताका को विश्व में फहरा दिया है। कश्मीर में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विभिन्न आयामों के उदाहरण हजारों वर्षों के बाद इस समय भी हमें विभिन्न रूपों में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गांवों तथा जानवरों की संस्कृत नामावली इस तथ्य को स्वत: सिद्ध करती है। विभिन्न दौरों से गुजरती हुई संस्कृत भाषा किसी प्रकार अपना अस्तित्व खो न बैठी, यह इसकी लोकप्रियता तथा पूर्णता का ज्वलन्त उदाहरण है।

पाठकों की सुविधा के लिए संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण तीन कालों में किया जा सकता है :—

1. संस्कृत का आदिकाल, 2. संस्कृत का मध्यकाल तथा 3. संस्कृत का आधुनिक काल। संस्कृत का आदिकाल प्रथम शती से चौदहवीं शती तक माना जाता है। इस युग में कश्मीर में संस्कृत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। प्राय: आठवीं शति से बारहवीं शती तक विविध विषयों में निष्णात कश्मीर के मूर्धन्य आचार्यों—आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट आदि आलंकारिकों, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त आदि दार्शनिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र आदि कथाकारों ने संस्कृत के विभिन्न विषयों पर अमर रचनायें लिखीं। यह युग वस्तुत: कश्मीर का स्वर्णयुग माना जाता है, क्योंकि इस युग ने मानव-चिन्तन को एक नई दिशा तथा एक नया दर्शन दिया जो संसार में प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत था जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य—'विक्रमांक देवचरितम्' में इस प्रकार किया है:—

"यत्रस्त्रीव्यं किमप्यपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतञ्च।"

निस्सन्देह यह काल संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण विकास का युग था।

संस्कृत का मध्यकाल चौदहवीं शती से प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं का शासनकाल समाप्त होने के बाद प्रायः मुसलमानों का युग शाहमीरी शासन-काल अर्थात् 1339 ई. से माना जाता है। उसके बाद चक शासनकाल (1554-1586 ई.), मुगल शासनकाल, अफगान शासनकाल तथा सिक्ख शासनकाल (1819-1846 ई.), डोगरा शासनकाल (1846 ई.-1947 ई.)। इन विभिन्न कालों में अर्थात् प्रायः पांच सौ वर्षों में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राजभाषा के रूप प्रचलित रही। अब संस्कृत का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। विदेशीय प्रभाव के कारण सोलहवीं शती तक इस भाषा का प्रयोग मिश्रित भाषा के रूप में हुआ। इसका उदाहरण हमें क्षेमेन्द्र रचित 'लोक-प्रकाश' में स्पष्ट रूप से मिलता है:—

"संवत्सरेऽत्र दिने श्री प्रेमयित कदले रैंजिज-अमुकेन रैंजिज अमुक-पुत्रेन हस्ते सति बंगलचीरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्तरे खुज्या अमुकः खुज्या अमुकं प्रति लिखित-खुज्या अमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति"। यह मिश्रित भाषा राज्यकार्यों तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी। विदेशीय राज्य हजारों वर्षों से हमारे हृदय पर अंकित भारतीय संस्कारों को मिटाने में सक्षम न हुआ। फलतः जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों तथा दृष्टांतों में संस्कृत का प्रयोग किया। सबसे पहले सन्त हजरत मखदूम साहिब (16वीं शती) का वसीयत-नामा दोनों लिपियों तथा दोनों भाषाओं—संस्कृत तथा फारसी में लिखा हुआ एक शिलालेख के रूप में हमें मिलता है जो इस समय जम्मू व कश्मीर के संग्रहा-लय में सुरिक्षत है। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि जैनुल-आब्दीन के राज्यकाल का एक शिलालेख संस्कृत में खौनमुह (संस्कृत-खौनमुष) गांव के पास भुवनेश्वर नामक स्थान में उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख तत्कालीन लोगों की संस्कृत के प्रति अनुराग को प्रकट करता है। इसी तरह हारीपर्वत की अधित्यका में बाहु-उद्दीन साहिब के सामने यवनों की कब्रों पर संस्कृत में अनेक शिलालेख पाये गये हैं। इसका उल्लेख डॉ. स्टीन ने भी राजतरंगिणी के अंग्रेजी अनुवाद में किया है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा मध्यकाल में भी किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

इस संदर्भ में यह कहना भी युक्ति-युक्त है कि यवन शासकों में केवल

सुल्तान जैनउल्लाब्दीन (1423-1475 ई.) एक ऐसा उदारचित, दूरदर्शी तथा संस्कृत-प्रेमी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति में महत्व-पूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता है। इस सुल्तान के विशाल दृष्टिकोण के कारण संस्कृत का पाठशालाओं में पुनः पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोनराज श्रीवर, नोत्थसोम, योधभट्ट, अवतारभट्ट, शिर्यभट्ट, आदि अनेक संस्कृत-विद्वान उसकी सभा को समलंकृत करते थे। इसी युग में कल्हण के बाद जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने 'राजतरंगिणी के आधार पर विभिन्न राजतरंगिणियों' की रचनाएं की हैं। जोनराज ने द्वितीय 'राजतरंगिणी' की रचना की जिसमें तेईस राजाओं का उल्लेख है। उसने तीन संस्कृत ग्रन्थों—महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय', मंख के 'श्रीकण्ठचरित' तथा जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' पर टिकायें लिखी हैं। जोनराज का शिष्य श्रीवर भी संस्कृत का कवि था। अपने गुरु के मरणोपरान्त उसने तीसरी राज-तरंगिणी लिखी तथा फारसी के मूर्धन्य कवि मुल्लाजामि की कृति यूसुफ जुलेखा के आधार पर संस्कृत काव्य "कथाकौतुक" लिखा है। इस तरह जैन उल्लाब्दीन अथवा बड़शाह के शासनकाल में संस्कृत की उन्नति का परिचय मिलता है।

इन युगों में यहां के साहित्यकारों ने प्रायः संस्कृत से निःसृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इनमें लल्लद्यद के 'वाख' (सं० वाक्), नुन्द ऋषि के 'श्रुक्य' (सं० श्लोक), शितिकण्ठ के 'पद', अरणीमाल के 'वचन' बहुत ही लोकप्रिय हैं। कुछ यवन राजाओं के संकीर्ण दृष्टिकोण से चिरकाल से बहती हुई संस्कृत रूपी गंगा का प्रवाह कुछ समय तक रुक गया। लेकिन यहां के संस्कृतभक्तों ने इस ज्ञानगंगा को किसी रूप में शुष्क होने न दिया। इसका स्रोत हमेशा सबको अपनी ओर आकृष्ट करता रहा। इस युग में अर्थात् मुगलशासन काल में जगद्धर भट्ट ने 'स्मृतिकुसमांजलि' की रचना की। और यहां के तीर्थों की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा महत्व देने के लिए कश्मीर के तीर्थवासी ब्राह्मणों ने 'माहात्म्य' लिखे जिनमें 'हरमुकेटेश्वर माहात्म्य', 'अमरेश्वरमाहात्म्य' तथा 'वितस्ता माहात्म्य' आदि महत्वपूर्ण हैं। डोगरा शासनकाल में भारतीय संस्कृति के प्रतीक महाराजा गुलाबसिंह के सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885 ई.) ने संस्कृत भाषा व साहित्य के बहुमुखी विकास के लिए जम्मू में 'रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय' तथा कश्मीर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' की स्थापना 1870 ई० में की जहां

विद्यार्थियों को प्राज्ञ से शास्त्री परीक्षा तक नि:शुल्क रूप संस्कृत पढ़ाई जाती थी तथा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। साथ ही 'श्रीरणवीर संस्कृत पुस्तकालय' की भी स्थापना हुई जो कालान्तर 1902 ई० में 'जम्मू व कश्मीर रिसर्च विभाग' में परिवर्तित हुआ। धीरे-धीरे यह विभाग बढ़ता गया। संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह करना भी इस विभाग के प्रमुख कार्यों में था। इस समय इस 'रिसर्च विभाग' के साथ संस्कृत पाण्डुलिपियों का भी एक अनुभाग है जहां संस्कृत के विभिन्न विषयों की प्राय: पांच हजार पाण्डुलिपियां शारदा तथा देवनागरी लिपि में सुरक्षित हैं। इस विभाग की स्थापना से सैकड़ों की संख्या में शैवदर्शन आदि विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन ग्रन्थों के संशोधन तथा सम्पादन में श्री जे.सी. चटर्जी, श्री मुकुन्दराम महामहोपाध्याय, श्री मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो. जगद्धर जाडू, श्री हरभट्ट शास्त्री, श्री दीनानाथ शास्त्री, डॉ० नलिनाक्ष दत्त तथा शिवनाथ शर्मा आदि के नाम स्मरणीय हैं।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्री ईश्वर कौल मे पाणिनीय सूत्रों के आधार पर संस्कृत में 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक पहला कश्मीरी व्याकरण लिखा जिसका सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने संपादन करके एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'कश्मीरी संस्कृत शब्द कोश' भी लिखा था जिसका उल्लेख ग्रियर्सन ने कश्मीरी डिक्शनरी के प्रथम खण्ड की भूमिका में किया है। इसकी तीसरी कृति—'कश्मीरी दशयाबोदय' नामक संस्कृति कोश की पाण्डुलिपि दो खंडों में इस समय रिसर्च विभाग में सुरक्षित है। वह कोश संस्कृत पद्यों में लिखा गया है। इसमें कश्मीरी शब्दों के पर्याय दस भाषाओं में दिये गये हैं जैसे—अरबी, फारसी, अंग्रेजी, लामी और बलती आदि।

इस संदर्भ में महामहोपाध्याय मुकुन्दराम शास्त्री का योगदान भी सराहनीय है। सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित 'कश्मीरी डिक्शनरी' के चार खण्डों में महामहोपाध्याय मुकुन्दराम ने प्राय: पचीस हजार कश्मीरी शब्दों के तथा मुहावरों का अनुवाद संस्कृत में किया है और कृष्ण राजानक (राजदान) के 'शिव परिणय' के कश्मीरी पद्यों की छाया (Gloss) संस्कृत में लिखी है। यह दोनों पुस्तकें 'एशियाटिक सोसाइटी' से प्रकाशित हुई हैं।

आधुनिक काल : यह काल 1947 ई. से आज तक माना जाता है । इस काल में यहां की स्वयंसेवी संस्थाओं सायंकालीन पाठशालाओं, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों ने संस्कृत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वातन्त्र्योत्तर संकृस्त की स्थिति : स्वतन्त्रता के बाद संस्कृत के महत्व को सब देशवासियों ने समझ लिया । भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के महान् नेताओं तक राष्ट्रभक्तों ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया । आजादी के आन्दोलन से बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्देमातरम्' के विजयनाद और महामना मदनमोहन मालवीय के अनथक प्रयत्नों से देशवासियों को विशेषतः संस्कृत प्रेमियों को प्रेरणा मिली । समूचे देश में संस्कृत के प्रति राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई । भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व संस्कृत को लोग समझने लगे । इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हुआ । इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा । इस दिशा में प्रत्येक राज्य में शिक्षा विभाग की ओर से महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गये । फलतः विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत को समुचित स्थान मिला । इसमें कश्मीर भी पीछे नहीं रहा ।

स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान : संस्कृत के प्रचार व प्रसार में विभिन्न संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है । इन संस्थाओं में से सर्वप्रथम कश्मीर मण्डल के ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा 'ब्राह्मण महामण्डल' ने धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करके लोगों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया । इस समय यहां एक संस्कृत पुस्तकालय तथा वाचनालय भी है । वाचनालय में विभिन्न पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'संस्कृतामृतम्' भी आती है । मण्डल के मुख्य कार्यालय में संस्कृत पाण्डुलिपियों का एक अनुभाग भी है जहां अर्थाभाव के कारण पाण्डुलिपियां जीर्ण शीर्ण अवस्था में पड़ी हुई हैं । ब्रा. म. मण्डल के महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से—हररात्रिनिर्णयविधि, शिवरात्रिपूजाविधि, पूजा संकलन, मलमास निर्णय तथा शारदा प्राइमर (प्रेस में) है । इस संस्था से प्रतिवर्ष हिन्दी में 'पंचांग' प्रकाशित होता है जिसमें धार्मिक लेख आदि भी होते हैं। इस वर्ष से मण्डल द्विभाषिक (हिन्दी तथा संस्कृत) 'प्रकाश' नामक पत्रिका प्रकाशित करने के लिए कृतसंकल्प है। गत तीन दशकों से मण्डल संस्कृत के प्रचार व प्रसार में संलग्न है ।

शारदापीठ रिसर्च सेंटर : इसकी स्थापना डॉ. राधाकृष्ण काव ने 1954 ई. में कर्णनगर में की । इस केन्द्र से "शारदापीठ रिसर्च सिरीज" नामक त्रैमासिक पत्रिका अंग्रेजी तथा संस्कृत में प्रकाशित होती थी । 1983 ई.

में इनके अकाल काल-कवलित होने से इसकी साहित्यिक गतिविधियाँ बन्द हो गईं।

शैवदर्शन मठिका:—शैवदर्शन के आचार्य श्री स्वामी लक्ष्मण जी गुप्त-गंगा में प्रति रविवार को शैवदर्शन के गूढ़ विषयों पर प्रवचन देते हैं। स्थानीय तथा विदेशीय प्रौढ़ों को शैवदर्शन का ज्ञान कराते हैं। इनकी शिष्या प्रभादेवी भी इस कार्य में प्रयत्नशील हैं।

श्रीराम शैवाश्रम :—फतेह कदल में स्थित यह आश्रम अनेक वर्षों से शैव-दर्शन के प्रचार व प्रसार में संलग्न है। यहां प्रति रविवार—प्रौढ वर्ग को शैव-दर्शन की प्रारम्भिक पुस्तकें पढ़ाई जाती है। गतवर्ष श्रीधर जी की मृत्यु से इस संस्था को महान् क्षति हुई।

स्वामी विद्याधर आश्रम:—यह आश्रम कर्णनगर में स्थित है। यहां पर प्रौढ़ों को शैवदर्शन के विभिन्न विषयों से परिचित किया जाता है। अब इस आश्रम में कई कारणों से शिथिलता आ गई है।

कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन:—इसकी स्थापना 1956 ई. में श्रीनगर के 'क्रालख्वड' नामक मुहल्ले में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य कश्मीर में संस्कृत का प्रचार व प्रसार करना था। अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसके संस्थापक सदस्यों ने 'भारतीय विद्याभवन' द्वारा स्वीकृत संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया। निःशुल्क रूप से संस्कृत पढ़ाने के लिए सायं-कालीन पाठशाला खोली गई जिसमें श्री ओंकरनाथ शास्त्री (लंगू) तथा मोतीलाल 'प्रमोद' आदि संस्कृत पढ़ाते थे। प्रायः चार सौ विद्यार्थी सम्मेलन से 'भारतीय विद्याभवन' की विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। इसमें गैर-हिन्दू छात्रायें भी संस्कृत पढ़ती थीं।

साहित्यक गोष्ठियों, संस्कृत कवि सम्मेलनों तथा कल्हण आदि संगोष्ठियों का आयोजन भी सम्मेलन की गतिविधियों का प्रमुख अंग रहा है। कालान्तर 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की एक परियोजना के अन्तर्गत 'संस्कृत सम्मेलन' के सक्रिय सदस्यों ने 'विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ जम्मू व कश्मीर राज्यभागः' नामक पुस्तक में कश्मीर का खंड लिखने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इन संस्कृत लेखकों में से—डॉ. गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', डॉ. राधाकृष्ण काव, श्री दीनानाथ शास्त्री, श्री मोतीलाल

'पुष्कर', श्री त्रिभुवननाथ शास्त्री, श्री बदरीनाथ कल्ला शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय है। यह शताब्दी ग्रन्थ 1966 ई. में प्रकाशित हुआ है।

इस सम्मेलन ने यहां के युवावर्ग को संस्कृत में लिखने, बोलने तथा रचना करने की प्रेरणा दी है। वास्तव में आज की पीढ़ी जिस प्रकार संस्कृत-प्रचार तथा साहित्य सृजन के प्रति जागरूक तथा प्रयत्नशील है, उसका आदिस्रोत— कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन है।

विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संस्कृत:—आर्यसमाज के तत्त्वावधान संचालित-'देवकी आर्यपुत्री पाठशाला' में इस समय संस्कृत विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। प्राइवेट विद्यालयों में यह एक आदर्श विद्यालय है।

श्रीरूपादेवी शारदा पीठ :—अन्तिम डोगरा शासक महाराजा हरिसिंह के समय के महालेखपाल (Accountant General) श्री परमान्द ने अपनी सुपुत्री श्रीरूपादेवी के नाम पर 'श्रीरूपादेवी शारदा पीठ' की स्थापना 1953 ई. में फतेहकदल में स्थित रघुनाथ मन्दिर के प्रांगण में की। इसमें पहले-पहल प्राज्ञ विशारद तथा शास्त्री तक जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार छात्राओं को शिक्षा दी जाती थी।

इसके प्रथम प्राचार्य ऊधमपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दयाराम शास्त्री थे। उनके दिशानिर्देश में इस प्राच्य विद्या विभाग ने काफी उन्नति की। परिणाम-स्वरूप पांच छात्रायें उस समय शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं। श्री परमानन्द के स्वर्गवास के बाद यह 'ओरियण्टल विभाग' सुव्यवस्थित रूप से चल न सका। बाद में छः वर्षों के बाद यह विभाग विद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस विद्यालय की विशेषता यह है कि इसमें गैर हिन्दू विद्यार्थी भी संस्कृत पढ़ रहे हैं। इस समय विद्यार्थियों की संख्या प्रायः सौ तक है। 'शारदा पीठ' गत कई वर्षों से भारतीय विद्याभवन की संस्कृत परीक्षाओं का भी संचालन करता है।

राजकीय संस्कृत पाठशाला:—महाराजा रणवीर सिंह ने 1870 ई. में इस पाठशाला की स्थापना 'श्रीनगर में की। इस पाठशाला में पंजाब विश्व-विद्यालय तथा जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्री परीक्षा तक संस्कृत निःशुल्क रूप से पढ़ाई जाती थी। छः अध्यापक यहां

संस्कृत पढ़ाते थे। कश्मीर में यही एक आदर्श संस्कृत पाठशाला थी जो 1970 ई. से बन्द हो गई है।

आज़ादी के बाद 1949 ई. में जम्मू व कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने इस पाठशाला को 'गवर्नमेन्ट ओरियण्टल कालेज' में परिवर्तित कर दिया। इस समय सायंकालीन कालेज में अरबी, फारसी तथा उर्दू में आनर्स परीक्षाओं तक भाषायें पढ़ाई जाती हैं।

इस समय राजकीय विद्यालयों में विशेषत: गांव के विद्यालयों में संस्कृत अध्यापकों के अभाव में संस्कृत भाषा का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। यदि सरकार की ओर से इसकी समुचित व्यवस्था की जाये, संभवतः इस राष्ट्रीय समस्या का समाधान होगा।

इस समय कश्मीर में केवल चार महाविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती है—विमेन कालेज, मौलाना आजाद रोड, विमेन कालेज, नवाकदल, गवर्नमेन्ट कालेज, अनन्तनाग, गवर्नमेन्ट कालेज, स्नेपोर।

हायरी सेकंडरी के कुछ एक स्कूलों में भी यह पढ़ाई जाती है।

विश्वविद्यायल में संस्कृत:—कश्मीर विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग की स्थापना 1983 ई. में हुई। आज तक इस विभाग से प्राय: 23 विद्यार्थी एम. ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। तीन छात्राओं को एम. फ़िल. की उपाधियां तथा एक अध्यापक को पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई है। इस समय चार अनुसंधित्सु एम· फिल. कर रही हैं। इस विभाग में—दो अध्यापिकायें तथा एक अध्यापक हैं। गत चार वर्षों से डॉ. बी. एन. कल्ला भी इस विभाग में संस्कृत पढ़ा रहे हैं।

मध्य एशियाई विभाग की स्थापना :—जम्मू व कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के प्रयत्नों से मध्य एशिया विभाग की स्थापना 1979 ई. में जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय में हुई। इस समय इस विभाग में एक निदेशक हैं। सात अध्यापक मध्य एशिया के विभिन्न विषयों पर हमेशा कार्य कर रहे हैं तथा रिसर्च स्कालर भी प्राध्यापकों के दिशा-निर्देश में अनुसंधान के कार्य में लगे हुए हैं। इन अध्यापकों में से संस्कृत के दो अध्यापक—डॉ. बी. के. कौल

तथा डॉ. बी. एन. कल्ला हैं। सबसे पहले इस लेख के लेखक ने 'काश्मीरिकी संस्कृतभाषयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्' (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन) इस भाषा विज्ञान के विषय पर संस्कृत में शोध-प्रबन्ध लिखा है। इस समय इसके प्रकाशन के लिए 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार चल रहा है। इसके शीघ्र ही प्रकाशित होन की संभावना है। यह हर्ष का विषय है कि मध्य एशियाई बिभाग ने इस वर्ष वितस्ता माहात्मयम' छपाने के लिए प्रेस को भेज दिया है। इसमें तीन संस्कृत के रिसर्च स्कालरों ने एम. फिल. की उपाधियां प्राप्त कीं। इनमें दो पी-एच. डी. के शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं।

परमानन्द रिसर्च इन्सटिच्यूट:—यह अनुसंधान संस्थान 1974 ई. से संस्कृत के विभिन्न विषयों पर शोध-कार्य कर रहा है। इसके प्रथम निदेशक प्रो. काशीनाथ दर थे। उनके समय संस्थान ने अनुसंधान की दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया। उनके निधन के बाद संस्थान को काफी धक्का लगा। इस संस्थान के प्रकाशनों में से हैं—अमरेश्वर माहात्म्य (हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित) राज्ञी प्रादुर्भाव (अंग्रेजी तथा हिन्दी में) तथा वटुक पूजा। एक परियोजना के अन्तर्गत श्रीवर की राजतरंगिणी का अनुवाद प्रो. काशीनाथ दर ने अंग्रेजी में किया है जो शीघ्र ही दिल्ली से प्रकाशित होगा।

कश्मीर में पहली श्री संस्कृत पत्रिका:—डॉ. कुलभूषण के संस्कृत के प्रति अनन्य अनुराग के कारण यहां 1988 विक्रमी संवत् में प्रोफेसर नित्यानन्द शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक 'श्रीपत्रिका' संस्कृत में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका बारह वर्षों तक निरन्तर रूप से प्रकाशित होती रही। इसमें विशेषतः स्थानीय विद्वानों की शोधात्मक रचनायें प्रकाशित होती थीं। कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. गोविन्द जी राजदान ने अकबर के बाद 'राजतरंगिणी' के आधार पर कश्मीर का इतिवृत्त लिखना आरम्भ किया था। इसमें उनकी रचनाओं के कतिपय अंश 'श्रीपत्रिका' में प्रकाशित हुए हैं। डॉ. कुलभूषण के देहावसान के बाद इसका प्रकाशन बन्द हुआ।

गत वर्ष 1986 ई. में डॉ. मण्डन मिश्र के कर्मठ व्यक्तित्व तथा अदम्य साहस के कारण कश्मीर में 'श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्मू' की उपशाखा श्रीनगर में स्थापित हुई। इसका केन्द्र इस समय जवाहर नगर में स्थित है। इस

समय इसमें दो स्थानीय संस्कृत विद्वानों प्रो. नीलकण्ठ गुर्टू तथा श्री दीनानाथ शास्त्री (यक्ष) की नियुक्ति हुई है। आशा है कि इस केन्द्र के खुल जाने से शैवदर्शन की प्राचीन परम्परा सुव्यवस्थित रूप से पुनर्जीवित होगी तथा इस दर्शन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश पड़ जायेगा जिससे भावी पीढ़ी को अवश्य प्रेरणा मिलेगी। इसका बीज कालान्तर में वट वृक्ष का रूप धारण करके सब को आत्मसात् करके ज्ञान-गरिमा में शीतलता प्रदान करेगा।

संस्कृत साहित्य को भिन्न रूपों में समृद्ध बनाने में जिन कश्मीरी विद्वानों ने काम किया है उनकी नामावली इस प्रकार है:—

प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला
श्री नाथराम कल्ला शास्त्री
प्रो. श्रीकण्ठ कौल
डॉ. श्रीनाथ तिक्कू
श्री जानकीनाथ 'कमल'
श्री प्रेमनाथ हण्डू
डॉ. बलजिन्नाथ पण्डित
श्री गोविन्द भट्ट शास्त्री
ज्योतिषी केशव भट्ट शास्त्री
श्री दुर्गाप्रसाद काचरू
प्रो. जियालाल कौल
श्री जगन्नाथ रिवू शास्त्री
श्री हरभट्ट शास्त्री

संस्कृत के प्रचार-प्रसार में जिन महानुभावों ने काम किया है या जो इस समय निष्काम रूप से काम करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं:—

1. ज्योतिषी प्रेमनाथ शास्त्री
2. श्री मुकुन्दराम शास्त्री
3. श्री जगन्नाथ सिबू
4. स्वर्गीय नित्यानन्द साबन्दू शास्त्री
5. श्री पीताम्बर हण्डू शास्त्री
6. श्री मोतीलाल ब्रह्मचारी
7. श्री नेत्रपाल शास्त्री
8. श्री काशीनाथ रिवू शास्त्री

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कश्मीर में संस्कृत का भविष्य समुज्ज्वल है। यह भाषा सर्वदा इन्द्रधनुष की तरह सबको अपने स्वाभाविक रंगों से आकृष्ट करती रहेगी।

यद्यपि आजकल कश्मीर में प्राचीन काल की तरह संस्कृत बोली नहीं जाती है तथपि यह—तत्सम, तद्भव, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में लाखों लोगों द्वारा प्रतिदिन प्रयुक्त होती है; जैसे:—

संस्कृत वाक्य	कश्मीरी वाक्य
दूरं मा गच्छ	दूर म गद्द
चिरं मा कुरु	चेर म कर
तप्तं मा खादय	तोत म ख्य
एतु एतु	हत-हत
निर्गच्छ	नेर गद्द

संदर्भ ग्रन्थ

1. कल्हण कृत—राजतरंगिणी—डॉ. स्टीन द्वारा संपादित।
2. कीथ कृत—संस्कृत साहित्य का इतिहासः—अनुवादक—डॉ. मंगलदेव शास्त्री
3. विश्वसंस्कृत शताब्दी ग्रन्थ, जम्मू व कश्मीर राज्य भागः—डॉ. मण्डन मिश्र द्वारा संपादित
4. लोक प्रकाश—प्रो. जगद्धर जाडू द्वारा संपादित
5. Kashmir Then and Now—G. L. Kaul
6. A History of Kashmir—P. N. Kaul, Bamzai
7. काश्मीरिकी संस्कृतभाषायोस्तुलनात्मकमध्ययनम् (कश्मीरी भाषा तथा संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन) डॉ. बी. एन. कल्ला (लेखक का शोध-प्रबन्ध)।
8. जोनराजकृत—राजतरंगिणी—श्री कण्ठ कौल द्वारा संपादित।
9. कश्मीरे संस्कृत-शिलालेखाः—बदरीनाथ कल्ला शास्त्री
(Published in the Proceedings of Internationl Sanskrit Conference, 1972)

श्रीनगरी

(नीलजा—11, पृष्ठ 67 से आगे)

(नीलजा—11, पृष्ठ 67 से आगे)

● अवतार कृष्ण राज़दान

इस बात का कहीं भी कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता कि श्रीनगर के अतिरिक्त कश्मीर की राजधानी कहां थी किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह बात हर हालत में सभी को माननी पड़ती है कि यद्यपि समय-समय पर यहां विभिन्न राजाओं ने अपने नाम पर विभिन्न स्थानों का चयन करके इनको कश्मीर की राजधानी के रूप में संवार कर बसाया, मगर कालान्तर में वे नष्ट हो गए और अन्त में लोग श्रीनगरी को ही कश्मीर की राजधानी के रूप में मानने लगे ।

कश्मीर में मुसलमानों के आगमन के शुरू होने से कुछ ही पहले कोटा रानी ने अन्तर्कोटि को कश्मीर की राजधानी बनाया किन्तु अंत में लोगों ने श्रीनगरी को ही कश्मीर की राजधानी के रूप में स्वीकार किया । और हां, यद्यपि शाहमीर ने अपने राजत्वकाल में कुछ नए क्षेत्र अपने नाम पर बसाए फिर भी ये बाद में श्रीनगर की परिधि में आ गए और अब इस समय इनको शहर के ही अंग मान लिए जाते हैं ।

शाहमीर के राजत्वकाल में श्रीनगर राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है । यदि हम उस समय के श्रीनगर के इतिहास को परखेंगे तो ऐसा लगता है कि यही कश्मीर की असली राजधानी रही है । उस समय यद्यपि सरकारी कार्यालयों की स्थापना इधर-उधर हुई थीं, फिर भी इससे श्रीनगर के जन-जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । शहर पहले की तरह बस कर कायम था । अधिकांश लोग हाथ से बनी चीजों को बनाकर व्यस्त रहते थे । कुछ कार्यालयों में कर्मचारी विभिन्न पदों पर आसीन थे । उस समय

वितस्ता के दोनों 'किनारे पर अधिकांश मकान तिमंजिला थे और बहुत सी जगहों पर वितस्ता को नाव-पुलिया से पार किया जाता था।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुसलमान राजाओं ने पहले श्रीनगर का उत्तर-पूर्वी भाग सजाया-संवारा। सुल्तान शहाबुद्दीन ने कश्मीर की राजधानी हारी-पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में बनायी। बड़शाह ने 'नवशहर' बसाया जहां इन्होंने बारह-मंजिला एक भव्य भवन का निर्माण किया था। कहा जाता है कि इसमें एक साथ कई लोगों के बैठने की व्यवस्था थी। इनके इस नए शहर में एक विश्वविद्यालय था जहां ब्राह्मणों और विद्वानों के ठहरने के लिए एक अलग बस्ती थी। यहां अधिकांश मकान पंचमंजिला और लकड़ी के बने थे। अब्बुल फझल के अनुसार, "श्रीनगर एक भव्य नगर है। इसको बसने-बसाने में बहुत समय लगा है। वितस्ता इसके बीचों-बीच प्रवाहित होती है। यहां के सारे मकान लकड़ी के बने हैं और इनमें से कई पंचमंजिला हैं। मिट्टी के छतों पर फूल खिले रहते हैं और वसंत में इनको देखते ही बनता है।"

जहांगीर कश्मीर की प्राकृतिक छटा से बहुत प्रभावित थे। उनके लिए श्रीनगर स्वर्ग के समान था। जहांगीर लिखते हैं कि "यहाँ के छतों पर उगे पीले-पीले फूलों को देखकर आंखें निहाल होती थीं। बादाम के शगूफों के नीचे बैठना आनन्दमय होता था। यहां ये शगूफे दस मार्च से खिल जाते थे। इसके बाद रंगीन यासमिन के शगूफे फूट पड़ते थे। कश्मीर का वसंत इतना सुहावना है कि इसको चित्रित करके लिए मेरे पास शब्द ही नहीं।' इससे यह बात साफ लगती है कि यहां जहांगीर ने जिस वसंत का चित्रण किया है वह वस्तुतः श्रीनगर का है क्योंकि इन्होंने यहीं विश्राम किया था।

बरनियर जब औरंगजेब के साथ यहां आए तो वे एक नए आलम में खो गए। लिखते हैं—'वितस्ता के किनारे पर जो मकान हैं, उनके साथ छोटे-मोटे बगीचे भी लगे हुए हैं। वसंत और ग्रीष्म में ये बगीचे उस समय एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करते हैं जब सैलानी नाव में बैठकर वितस्ता का सेर करते हैं।'

उस समय शहर के मध्य भाग में भी मकानों के साथ बाग-बगीचे लगे थे। डल-झील के किनारे पर मकानों के साथ-साथ छोटे-छोटे नाले बहते थे जिनमें

सैलानी नाव चलाकर प्रकृति का आनन्द-रस लूटते थे।

सत्य तो यह है कि उस समय वितस्ता का पानी हाजिम माना जाता था। हिन्दू-काल में ही शहर में हमाम बनाने का रिवाज था। वितस्ता घाट के दोनों तरफ नहाने के लिए कमरे और आईना-खाना थे। शरीफ-उल-उद्दीन याजमी के समय वितस्ता पर कोई पुल नहीं था किन्तु उनके अनुसार अर्थात 1378 ई. में यहां तीन नाव-पुल जरूर थे। वितस्ता पर पुल के निर्माण करने श्रेय मुसलमान राजाओं को प्राप्त है। कहते हैं कि वितस्ता पर बना जैनाकदल पहला पुल है जिसका निर्माण बड़शाह ने किया है। जहांगीर के समय वितस्ता पर बने ऐसे यातयात पुलों की संख्या चार तक हो गयी थी किन्तु बरनियर, जो इनके बाद कश्मीर आए थे, के अनुसार इनकी संख्या दो थी। सन् 1835 ई. में बेरन हुगल लिखते हैं कि कश्मीर में देहात के अन्य भागों में ज्यादा पुल थे। इनकी मरम्मत समय-समय पर तत्कालीन सरकार करती थी।

यह सभी को मालूम है कि पहले आजकल की तरह सड़कें नही थीं, इस-लिए यहां यातायात वितस्ता से ही होता था। कश्मीर में वाणिज्य को बढ़ावा देने में वितस्ता ने मुख्य भूमिका निभायी है। कश्मीर के लोकप्रिय राजा बड़शाह यहां के कल्याण-कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। इन्होंने डल के पानी का रुख 'मोर' की ओर कर दिया। इससे पहले यह वितस्ता में बहता था। किन्तु बड़शाह के इस कदम से शहर के आंतरिक भागों से माल ढोने में सुविधा हो गयी। इस नाले का रुख इस तरह कर दिया गया कि इसका पानी शादीपुर के निकट वितस्ता में मिल जाए। यह नाला अब भी 'मोर क्वल' के नाम से जाना जाता है और कभी-कभी यह यातायात के लिए इस्तेमाल में भी लाया जाता है। इसमें अब भी बड़ी-बड़ी नावें चल सकती हैं और इसी के द्वारा शहर के विभिन्न भागों तक रसद आदि पहुंचायी जाती है। 'मोर-क्वल' के नुक्कड़ पर बड़शाह ने स्मृति-स्वरूप एक विहार का निर्माण किया था। किन्तु आज-कल इसके पुरावशेष उपलब्ध नहीं हैं।

सुल्तान अलावउद्दीन ने अन्तर्कोटि के बजाय पुरानी राजधानी को ही क्यों स्वीकार किया, इसका प्रमुख कारण है कि उनके राजत्वकाल में मुसलमानों की जनसंख्या जामा मस्जिद के आस-पास फैली हुई थी और यह सारा क्षेत्र इस्लामी-संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। इसी क्षेत्र में राजा ने

अपने नाम पर अलाउद्दीनपुर बसाया। इस तरह से यह प्रमाणित होता है कि इस्लामी संस्कृति को पनपाने में श्रीनगर का अनुपम योगदान रहा है।

शाहमीरी सुल्तानों के राजत्वकाल से आज तक श्रीनगर कश्मीर के केन्द्र बिन्दु का काम करती आयी है। जब भी श्रीनगर में क्रान्ति हुई, उसका प्रभाव यहां के गांव-गांव तक पड़ा। मुगलों ने जबरन पर्वतमालाओं का दामन बाग-बगीचे लगाकर सजाया-संवारा। इस प्रकार इन्होंने फिर से बाग लगाने की रिवायत कायम की जो तब तक मिट चुकी थी। सन् 1753 ई. में ज्यों ही पठानों ने कश्मीर को अपने एकाधिकार में कर लिया तो उस समय डल-झील के आस-पास सात सौ बागान लगे हुए थे। मुस्लिम दौर में कोतवाल शहर का प्रशासक होने के साथ-साथ स्वास्थ्य विभाग भी देखता था। जब बड़शाह ने 'नवशहर' बसाया तो उसने यह कार्य एक उच्चाधिकारी के जिम्मे रखा जिसका नाम दावरान अमारात था। जो काम आजकल के टाउन प्लेनर का होता है वही काम उसका भी होता था। 'नवशहर' बसाते समय बड़शाह ने इसमें स्वास्थ्य-संबंधी योजनाओं के आधार पर कई अस्पताल बनाये थे। मिर्जा हैदर दुगलत ने ज्यों ही बड़शाह द्वारा बसाया गया 'नवशहर' देखा तो वह आश्चर्य में पड़ गया। उस समय शहर की घनी आबादी थी। उसने कायरू लकड़ी से बने ऊंचे-ऊंचे मकान देखे जिनमें अधिकांश पंचमंजिला थे। यहाँ सारे गली-कूचे पुख्ता बने थे। परचून बेचने वालों की दुकानें बड़े-बजार में लगी थीं। थोक पर चीजें घरों में ही मिलती थीं।

मुगल और पठानों ने श्रीनगर की असली सूरत और इसके निर्माण-कार्य में कोई परिवर्तन नहीं लाया। सम्राट अकबर ने नगर-नागर की नींव डालकर शहर का विस्तार किया। यह क्षेत्र या नगर हारी-पर्वत के दामन में उस जगह पर स्थित था जहां राजा प्रवरसेन ने पहले असली शहर बसाया था। इस नई बस्ती में मुगलों के अमीर, मंत्री एवं सैनिक कर्मचारी रहा करते थे। सन् 1567 ई. में हारी-पर्वत के आस-पास 'कोहेमारान' नामक दीवार में खड़ा करने का समारंभ हुआ जो मीर मुकीम कंठ की देख-रेख में और जहांगीर के राजतत्काल में पूरा किया गया।

पठानों ने दरबाग में एक नया मोहल्ला बसाया। यह स्थान वर्तमान शेर-गढ़ी है किन्तु अब इसके अवशेष कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं।

डॉ. परिभू के अनुसार मुगल एवं पठानों के राजत्वकाल में यहां लोगों की आर्थिक स्थिति अस्थिर थी। अधिकारियों ने शहर की सफाई के लिए विशेष ध्यान नहीं दिया था। सन् 1783 में एक विदेशी विद्वान फारसटर यहां आए। इन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि शहर के गली कूचे बहुत तंग हैं। हर गली के नुक्कड़ पर कचरे के ढेर पड़े हैं। इसके विपरीत मूरक्राफ्ट अपनी यात्रा-संस्मरण में लिखते हैं कि जितने भी लोग श्रीनगर में रहते हैं, उनसे भी ज्यादा यहां मकान दिखते हैं। यहां के गली-कूचे बहुत तंग हैं। चारों ओर कचरे के ढेर दिखाई देते हैं। मकान खस्ता हो गए हैं। कइयों के दरवाजे नहीं और इनमें से अधिकांश की खिड़कियां चिथड़ों से ढंक ली गई हैं। इन सभी तथ्यों से यह बात साफ लगती है कि पठान और सिक्खों के राजत्वकाल में श्रीनगर अपने हुस्न में नहीं था। डोगरा दौर वे प्रारंभिक-काल में भी श्रीनगर अपनी असली सूरत में नहीं रह गया था। लोग, वितस्ता, नाला और झीलों का पानी पीते थे। गगरिबल (नेहरू-पार्क) के क्षेत्र का पानी हाजिम माना जाता था। बहुत से मकानों के साथ कुएं भी लगे थे। यातायात के लिए सड़कें तो बहुत कम पायी जाती थीं। उस समय नालों तथा दरियाओं द्वारा यातायात हो रहा था।

'समय क्या हुआ ?'—यह जानने के लिए हर दिन बारह बजे हारी-पर्वत से तोप चलायी जाती थी। कश्मीरी में 'दुपहर-त्रावुन का मुहावरा इसी दौर की यादगार है। हो सकता है कि यह सिलसिला पहले भी रहा हो फिर भी हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं। रात्रि दस बजे की तोप चलाने के बाद शहर में चहल-पहल लगभग बन्द हो जाती और किसी को भी पुल पार करने की इजाजत नहीं होती थी।

उस समय शहर में बने मकानों के छत घास-फूस के बजाय भोजपत्र के बने होते थे किन्तु कहीं-कहीं पर घास-फूस के छत भी दिखायी देते थे। राम मुंशी बाग का सारा क्षेत्र योरुपी लोगों के रहने के लिए सुरक्षित था। उस समय वहां एक चर्च था जो आज भी गेस्ट हाऊस के साथ विद्यमान है। वर्तमान एम्पोरियम बाग (बाद में कल्चरल कंपलेक्स) रेजिडेंसी थी जिसमें अंगरेजों का उच्चाधिकारी रहता था। बड़ा डाकखाना उसी जगह पर था जहां यह आज़ है। बंद पर कई योरुपी एजेन्सियां और दुकानें थीं। शेखबाग का क्षेत्र योरुपी मिशनरियों के लिए सुरक्षित था। पहले रेजिडेंसी का दफ्तर भी यहीं था। पुराने जमाने की यहां स्मृति स्वरूप मिशन-स्कूल और ईसाइ कब्रिस्ताान भी है।

पश्चिम की ओर शंकराचार्य के दामन में इसी स्थान पर मिशन अस्पताल था जहां आज का चेस्ट डिजीज अस्पताल है। गोल्फ-ग्राऊंड और पोलो ग्राऊंड तब से उसी तरह अपनी सूरत में पाए जाते हैं। अलबत्ता पोलो ग्राऊंड अब सीमित कर दिया गया है। इस मैदान में महाराजा और उसके दरबारी पोलो खेलते थे।

शहर के बाहर जो सड़कें विभिन्न दिशाओं की ओर जाती थीं, इनके दोनों तरफ फुटपाथ बनाए गए थे। इस समय यहां अधिकांश मकान उसी तरह बेतरतीब दशा में थे जिस तरह यह आजकल कहीं-कहीं शहर के निचले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। बिसको साहब के अनुसार जब मैंने पहली बार शहर में प्रवेश किया तो मुझे लगा कि या तो इस पर बम बरसाए गए हैं या भूकंप से इसके सारे मकान ढह गए हैं। किन्तु भोजपत्र-निर्मित छतों पर फूलों की बहार को देखकर आंखें निहार हो जाती थीं। धनिक घनी बस्तियों से निकल कर किसी खुली जगह मकान बनाते थे।

इस दौर में शहर व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। यहां कई देशों के व्यापारी आते रहते थे। पशमीने का व्यापार चर्मोत्कर्ष पर पहुंच गया था। यहां से काबुल के सौदागर मालाएं, नासवरी डिब्बे और पेपरमेशी के कलमदान अफगानिस्तान से लाते थे तुर्क-सौदागर चाय, चीनी के बर्तन, कस्तूरी ऊनी टोपियां और चान्दी के बने जेवर यहां के बाजार में बेचते थे। सूखे फल और फलों का व्यापार भी इसमें शामिल था। और हां, बदखशाँ के रास्ते से बन्दूक एवं प्यालियां भी श्रीनगर भेजी जाती थीं।

वर्ष में आठ महीने वितस्ता द्वारा लोगों का आना-जाना होता और शहर में सब डोंगी व नाव में अपने निश्चित स्थान तक पहुंच पाते थे। किन्तु शीतकाल में जब नदी-नालों के पानी का बहाव कम हो जाता था, इसमें यायायात और माल ढोने के कार्य में रुकावट-सी आ जाती थी। उस समय शेरगड़ी या सरकारी महल उस स्थान पर स्थित था जहां आजकल डिप्टी कमिशनर (श्रीनगर) का दफतर है। यहां महाराजा का महल था जिसमें वह गर्मियों में रहा करता था। इसके चारों ओर दीवार थी किन्तु इतनी मजबूत भी नहीं थी कि महल शत्रु के आक्रमण से बच सके। इसके प्रांगण में बने अधिकांश मकान लकड़ी के थे। यद्यपि यहां फौजी छावनी भी थी किन्तु न दीवारों पर बन्दूक लगे थे और न इसके आस-पास तोप। शेरगड़ी का सारा क्षेत्र ही चौरस था।

सड़क की ओर पत्थर की दीवार बनी थी। मकान और महल वितस्ता की ओर था। इस महल के पश्चिम की ओर एक बड़ी दीवार थी। इसके प्रांगन में एक बड़ा कुआं था जो तीस फीट गहरा और तीस फीट चौड़ा था, मगर डोगरा राजाओं ने इसको धीरे-धीरे पाट दिया।

टंकीकदल को पार करते ही शेरगड़ी के हाते में 'अवामखास' था जिसमें सरकारी दफ्तर थे। इसी होते में स्थित एक और भव्य-भवन का नाम रंग-महल था जिसमें महाराजा अपने मंत्रियों के साथ किसी खास विषय पर विचार-विमर्श करते थे। इसी महल में राज्यपाल भी रहता था। इस पर चढ़ने के लिए कई सीढ़ियां थीं। रंगमहल के पश्चिम में तोषखाना था जिसमें अमूल्य वस्तुएं सुरक्षित रहती थीं। इसके बाईं ओर के सभी भवन सरकारी कार्यालयों में परिणत थे। इस समय वितस्ता की ओर से महाराजा का बनाया हुआ एक मन्दिर है जिसके गुंबद पर सोने का मुलम्मा किया हुआ है।

शेरगड़ी को वस्तुतः अफगान राज्यपाल अमीर खान ने बनाया था। सिक्खों ने अपने राजत्वकाल में इसका नाम 'रंगगढ़' रखा था। सन् 1885 ई. में आए भूकंप से भवनों की दीवारों में लम्बी दरारें पड़ गयीं। डोगरों के राजत्वकाल में श्रीनगर की असली शक्ल-सूरत नहीं बदली तथापि शहर का विकास होने लगा। इसके साथ-साथ उस समय नगरवासियों को कई तरह की दैवी विपदाओं का सामना करना पड़ा। रणवीर सिंह के राजत्वकाल में यहां बड़े पैमाने महामारी फैल गयी। सन् 1892 ई. के ग्रीष्म में यहां कॉलरा की बीमारी ने लोगों को अपनी चपेट में ले लिया। कहा जाता है कि उस समय यहां 11712 लोगों का निधन हो गया। सर वाल्टर लारेंस के अनुसार उस समय मरने वालों की संख्या और भी हो सकती है क्योंकि इस बीमारी से सब त्रस्त थे और सभी के दिल धड़क रहे थे। उस समय शहर में मकानों की संख्या 22498 थी। धनिकों ने बंगले भी बनाए थे किन्तु अधिकांश मकान खस्ताहाल थे। उस समय इन सारे मकानों में 118160 लोग रहते थे। इतनी बड़ी जनसंख्या होने के बावजूद उस समय शहर में सिर्फ एक सो सफाई कर्मचारी काम पर लगे थे। फलस्वरूप शहर के सब गली-कूचे कचरे के ढेर में बदल गए थे। फिर भी श्रीनगरी अपनी प्राकृतिक-सुषमा के फलस्वरूप सभी को सुन्दर

लगती थी और सर वाल्टर लारेंस के अनुसार कि जब दरिया का पानी कल-कल बहता, मकानों के छतों से हरियाली उग आती तो उस गंदगी में भी श्रीनगर देखने योग्य शहर रहता था। शंकराचार्य पर्वत-शिखर और हारी-पर्वत इसके सौंदर्य के प्रतीक हैं। वितस्ता के पानी में ऊँची पर्वतमालाओं का प्रतिबिम्ब देखकर दिल चाहता है कि यहीं पर हमारी नाव रुक जाए। और हां, मकानों का बेतरतीब निर्माण देखकर श्रीनगर एकदम पुरावशेष का शहर लगता है। यहां मकानों के बनने की उपयुक्त जगह या तो वितस्ता के घाट हैं या 'मोर' नाले का किनारा।

डोगरों के राजत्वकाल में दो राज-मार्गों के निर्माण होने से श्रीनगर देश के निकट आ गया। डाक और संचार व्यवस्था कायम हो गयी। शिक्षण-प्रणाली का विस्तार कर शहर में नए स्कूल और कालेज खोले गए। इसी दौर में यहां म्यूनिसपैलिटी कायम हो गयी और शहर में सड़कें, नालियां, कूचे आदि के निर्माण का शुभारंभ किया गया। स्वास्थ्य संबंधी उसूलों के अनुसार निशात के 'वाटर-रिजर्वेयर' बनाया गया। शहर को बिजली पहुंचाने के लिए मोहरा में "पावर-हाउस" बनाया गया। गुपकार का मोहल्ला नये सिरे से बनाने के अतिरिक्त महाराजा हरिसिंह ने हरिसिंह हाई स्ट्रीट और डल-झील के आस-पास बुलिवार्ड-रोड का निर्माण भी कराया जो बाद में सैलानियों के मुख्य आकर्षण का केन्द्र बना। यही वह समय है जब यहां कई कारखाने खोले गए जिससे यहां श्रमिकों के एक दल का अस्तित्व हुआ। बाद में यही दल यहां की स्वन्त्रता के लिए लड़ा।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि 19वीं शती के अंत में श्रीनगर की गणना भारत के बाईस शहरों में की जाती थी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद श्रीनगर का नक्शा ही बदल गया है। हालांकि अब भी शहर के मध्य-भाग में घनी बस्ती है तथापि इसका विस्तार धीरे-धीरे हो रहा है। गत 75 वर्षों से इसका विस्तार किस हद तक हो रहा है और क्या यह वैज्ञानिक उसूलों के आधार पर हो रहा है—इस संबंध में हम सबको सोचने-समझने की जरूरत है। सन् 1891 ई. में यहां मकानों की संख्या 32248 थी और आज यह पैंतालीस हजार से अधिक हो गयी है। सन् 1891 ई. में शहर की जनसंख्या 18980 थी, और अब यह छः लाख के करीब पहुंच गयी है।

गत बीस वर्षों में तेरह किलोमीटर वर्गफन शहर के अन्तर्गत आया है। जिस समय श्रीनगर में म्यूनिस्पैलिटी कायम हो गयी थी, उस समय शहर का कुल रकबा 5 वर्ग मील था जो सन् 1941 ई. में बढ़कर 16 वर्गमील और सन् 1957 में 32 वर्गमील तक हो गया। शहर का विस्तार जिस अंदाज में हो रहा है, उसको देखते हुए इसका रकबा 50 वर्गमील तक हो जाएगा। इस समय शहर में 36 पार्क हैं। यहां कई होटलों के अतिरिक्त 5 बड़े होटल भी हैं। यूनिवर्सिटी के अतिरिक्त यहां एक इंजिनियरिंग कालेज, एक मेडिकल कालेज, एक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, तीन महिला कालेज, दो पालिटेकनिक कालेज और कई अन्य कालेज और स्कूल हैं।

लोगों की सुविधा के लिए यहां एक टी. बी. अस्पताल, एक जनाना अस्पताल, एस. एम. एच. एस. अस्पताल, बच्चों का अस्पताल, हड्डियों का अस्पताल और आधुनिक तर्ज पर बना एक मेडिकल इंस्टिच्यूट जिसको शेरि-कश्मीर मेडिकल इंस्टिच्यूट भी कहते हैं, मौजूद है।

श्रीनगर अब पुराना श्रीनगर नहीं रह गया है। आज से बीस वर्ष बाद इसका नक्शा और बदल जाएगा और इसकी सुन्दरता में चार चांद लगेंगे। हमारा यह शहर बहुत पुराना है। इतना पुराना जितना कि कश्मीर का इतिहास। इसने अब तक कई परिवर्तन देखे हैं किन्तु हर परिवर्तन में इसके सौंदर्य का निखार बढ़ता ही गया। इसलिए यह नगरी हर समय जवान और सुन्दर लग रही है।

ऐतिहासिक स्थान

शंकराचार्य-पर्वत

एक हजार फीट ऊंची शंकराचार्य-पर्वत की चोटी प्राचीन मंदिर और टेलिविजन टावर के कारण लोगों के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु रही है। ओतगजी इसको जबरवन पहाड़ियों से अलग करती है। इस पहाड़ी के दामन की बाईं ओर पहले श्रीनगरी का शहर बसा हुआ था। इस चोटी को पहले ज्येष्ठ लार्क और बाद में गोपदरी कहते थे। पहाड़ी की चोटी पर जो मंदिर है, उसके संबंध में कई विद्वानों का कहना है कि इसका शिलान्यास आज से साढ़े चार हजार वर्ष पहले किसी ने किया है। किसी समय यहां के मंदिर में सोने की तीन मूर्तियां थीं। राजा गोपादित्य ने पुराने मंदिर की मरम्मत की और यहां

ब्राह्मणों की सुविधा के लिए एक विहार बनाया। महाराजा संधिमत ने भी इस मंदिर की मरम्मत की है। कहते हैं सिकंदर 'बुतशिकन' ने इस मंदिर को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचायी थी। बड़शाह के समय इस मंदिर का कलश नष्टप्राय हो गया था। बाद में राजा के आदेशानुसार इसकी मरम्मत की गई। सिक्ख दौर के एक राज्यपाल गुलाम मुही-उद्दीन ने भी मंदिर के गुंबद की मरम्मत करायी। कुछ समय पहले किसी नेपाली साधू के कहने पर स्वामी शिवानन्द सरस्वती की देख-रेख में इसकी फिर से मरम्मत की गई।

सन् 1141 ई. में द्वारिकापीठ के शंकराचार्य ने पर्वत की चोटी पर आदि शंकराचार्य की मूर्ति स्थापित की।

इसको शंकराचार्य-पर्वत उस समय से कहा जाने लगा जब वेदान्त के सुप्रसिद्ध विद्वान व दार्शनिक आदि शंकराचार्य ने यहां कुछ समय के लिए विश्राम किया था।

मंदिर तक पहुंचने के लिए पहले यहां पत्थरों की बनी सीढ़ी लगी थी जो मुगलों के राजत्वकाल में हटाई गयी। बाद में वहां तक पहुंचने के लिए पैदल रास्ता बन गया। किन्तु अब टेलिविजन टावर बनने से यहां तक एक पुख्ते रास्ते का निर्माण कर दिया गया है।

मंदिर के प्रांगण में पत्थरों की बनी एक झोंपड़ी है जिसको कश्मीर हिन्दू जन पर्वती का बर्तनखाना कहते हैं। यहां एक बड़ा कुआं भी है जो पूजा में इस्तेमाल पानी आदि के लिए बनाया गया हो।

कुछ विद्वानों का कहना है कि अशोक के बेटे राजा जलोक द्वारा निर्मित ज्येष्ठेश्वर मंदिर इसी स्थान पर था किन्तु डॉ. बहूलर उनके इस मत से सहमत नहीं।

शंकराचार्य मंदिर की समय-समय पर जिन राजाओं ने मरम्मत करवाई है उनमें ललितादित्य का नाम भी शामिल है। ऐतिहासिक दृष्टि से मंदिर का ऊपरी भाग महत्वपूर्ण है अलबत्ता इसका ढांचा बहुत पुराना है। यह मंदिर की प्राचीनता का द्योतक माना जाता है। मंदिर अष्टकोणीय है मगर इसके अन्दर का कमरा गोल है जिसके मध्य-भाग में शिवलिंग है। मंदिर को देखकर

लगता है कि यह शिव-मंदिर है। शंकराचार्य मंदिर इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कश्मीर में शिव-पूजा का प्रचलन काफी पहले से चला आया है। वास्तुकला की दृष्टि से शंकराचार्य मंदिर काफी हद तक लदुव के मंदिर से समानता रखता है। सर आर. एल. स्टाइन का कहना है कि 'तख्ते-सुलेमान' का नाम इस पर्वत-चोटी का मुसलमानों के राजत्वकाल में पड़ा और इसके लिए यहां के कट्टरपंथी मुसलमान जिम्मेदार हैं।

हारी-पर्वत

हारी-पर्वत, जिसको बाद में कोहे-मारान भी कहा जाने लगा, कश्मीर का सबसे प्राचीन तीर्थ है। इस तीर्थस्थान के संबंध में प्रचलित है कि जब सतीसर से पानी का निकास हो गया तो हारी-पर्वत के स्थान पर भूमि की सतह निचली होने के कारण पानी वहीं रह गया और इसमें च्रंड नामक एक जल दानव आकर छिप गया। इसके मुंह से धुआं निकलता था। मोंड नामक एक और जल दैत्य, जिसका वास आजकल के डलगेट के पास माना जाता है, को छोड़ च्रंड यहां किसी को भी ठहरने नहीं देता था। देवता भी इन दो दैत्यों से डरते थे। इन्होंने माता शारिका की तपस्या की। माता ने इनकी मिन्नत मान ली। माता शारिका ने मैना का रूप धारण कर समीर-पर्वत से उड़ती हुई चोंच में कंकर लिए दैत्य पर फेंका। यही कंकर पर्वत का रूप धारण कर गया जिसको पहले सारिका-पर्वत और बाद में हारी-पर्वत कहा जाने लगा। किन्तु दैत्य पर्वत से गिर कर भी न मरा। वह बार-बार अपनी शक्ति से पर्वत को हिलाता रहा। अंत में देवी-देवता एक-साथ पर्वत की चोटी पर बैठ गए और उनके शाप से दैत्य चल बसा। कहा जाता है कि दैत्य के मर जाने से आज तक यहां प्रतिदिन देवी की पूजा हो रही है। एक पत्थर पर यहां एक यंत्र उत्कीर्णित है जिसको तंत्र सार पुस्तक में शारिका-चक्र कहा गया है। इस समय यह पत्थर यहां सुरक्षित है जो पवित्र मानकर पूजा जाता है।

प्राचीन काल से यह स्वयंभू तीर्थ हिन्दुओं के आकर्षण का केन्द्र बन गया है। 'शारिका-महात्म्य' के अनुसार दुर्गा ने मैना का रूप धारण करके इस पर्वत-चोटी का निर्माण कर वैराग्य का द्वार बन्द किया।

प्राचीन पुस्तकों में हारी-पर्वत को प्रद्युम्न पीठ, प्रद्युम्नगिरि और प्रद्युम्न शेखर कहा गया है। 'कथासरितसागर' में हारी-पर्वत की चोटी ऊषा और

अनिरुद्ध के प्रम-मिलन की प्रतीक है। किंवदंति है कि अनिरुद्ध प्रद्युम्न का बेटा था, इसलिए हारी-पर्वत को प्रद्युम्नगिरि भी कहा जाता था। कल्हण के अनुसार महाराजा राणादित्य ने इस पर्वत-चोटी पर साधुओं के लिए एक मठ का निर्माण किया था।

चोटी के पूर्व की ओर मखदूम साब की जियारत है और इसके दामन की बाईं ओर गणीशबल है। इसका पुराना नाम भीम सामन है। यह भी एक पुराना तीर्थ माना जाता है। कहते हैं कि जब प्रवरसेन-द्वितीय ने नए शहर का निर्माण किया तो गणेश ने अपना मुंह शहर की ओर किया किन्तु श्रीवर के अनुसार उस समय लोगों के कुकृत्य देखकर ही गणेश ने अपना मुंह शहर की ओर किया था।

प्राचीन पुस्तकों में इस बात की ओर कोई संकेत नहीं मिलता कि हिन्दू या बौद्ध काल में हारी-पर्वत की चोटी पर कोई किला था। दरअसल इस पर किला बनाने का काम अकबर के राजत्वकाल में शुरू हो गया। बाद में इसको जहांगीर ने पूरा कर दिया। कहते हैं कि उस समय इस काम पर एक करोड़ दस लाख रुपए व्यय हो गए थे। मुगल-काल में 'पोखरीब्रल' की ओर से 'नगर-नागर' नाम से एक बस्ती बसायी गयी जिसमें मुगल-दरबारी और सेना के उच्चाधिकारी रहते थे। इस पुरानी बस्ती के अवशेष अब भी यहां कहीं-कहीं पर मिलते हैं। किले के ऊपरी दीवार के निर्माण होने के संबंध में कहा जाता है कि यह अफगान गवर्नर अत्ता मोहम्मद खान ने बनाया है किन्तु जहां तक कश्मीर इतिहास के विवरणों का संबंध है, यह मुगलों के समय ही बना है।

यहां जून या जुलाई में मेला लगता है। वसन्त में बादामवारी का मेला हारी-पर्वत के दामन में (जो अब नाम-मात्र का ही रह गया है) मनाया जाता है। विक्रमी संवत के पहले दिन जिसको कश्मीरी पंडित 'नवरेह' (नव वर्ष) के नाम से मनाते हैं, कहते हैं इसी दिन देवी ने दैत्य पर कंकर गिराया था। यह दिन इसी खुशी में यहां मनाया जाता है।

शिव प्रवेशर

गणेशबल के थोड़े से फासले पर किले के पश्चिम में बहाउद्दीन की जो

जियारत है, वहां वस्तुतः एक मंदिर सुविख्यात था। शिव प्रवेशर नाम से प्रवरसेन द्वारा प्रवरपुर में निर्मित यह मंदिर सुविख्यात था। बिल्हण और कल्हण के अनुसार उस समय इस मंदिर का निर्माण कर महाराजा की यश-कीर्ति की किरणें चारों ओर फैली हुई थीं।

विष्णु राणा साम का मंदिर

पीर हाजी मोहम्मद की जियारत वस्तुतः राणा साम का मंदिर है जिसका निर्माण राणादित्य ने किया है। यह मंदिर जियारत में बदलने के कारण बहुत हद तक नष्ट होने से बच गया है। कइयों का कहना है कि यह मंदिर भारत-प्रसिद्ध था। मंख के अनुसार राजा का पिता इसी मंदिर में तपस्या करता था। कल्हण इसको प्रवरपुर का एक प्रसिद्ध तीर्थ मानता है। इस समय जियारत के आस-पास एक पुराना दीवार मौजूद है।

बटारक-मठ

जैनाकदल और आलीकदल के मध्य में एक बस्ती आती है जिसको 'ब्रेड़मर' कहते हैं। यहां प्राचीन काल में एक मठ बना था। बाद में इस सारे क्षेत्र को बटारक-मठ कहा जाने लगा। कई इसको द्यदमठ भी कहते हैं।

कहा जाता है कि यह मठ बहुत ऊंचा था। यह मूलरूप से सराय के काम आता था। कभी-कभी इसको अपनी सुरक्षा के काम में भी लाया जाता था। 9वीं शती में जब यहां विद्रोह हो गया तो दिदा रानी ने अपना छोटा बेटा इसी मठ में शरण के लिए भेजा। राजतरंगिणी में उल्लेख है कि आवश्यकता पड़ने पर यह मठ विश्राम-गृह के काम आता था। कभी-कभी इसको जेलखाना के तौर पर भी इस्तेमाल किया जाता था।

द्यदमठ

यहां की अधिकांश बस्तियां या वास्तु शिल्प राजा या रानियों के नाम से मशहूर रहे हैं। द्यदमठ जो वर्तमान द्यदमर मोहल्ले में है और जहां कश्मीरी की प्रसिद्ध कवयित्री रूप भवानी का आश्रम भी है, इसका स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। कहा जाता है कि इसको दिदा रानी ने अपने नाम पर बनाया है।

रानी ने यह मठ उन यात्रियों के लिए बनाया था जो भारत के विभिन्न भागों से यहां आते रहते थे।

स्कंद-भवन

सफाकदल के उत्तर में खन्द भवन नाम की एक बस्ती है। यह नाम उस विहार के नाम पर पड़ा है जो राजा युधिष्ठर के मंत्री स्कंदगुप्त ने बसाया था। स्टाइन ने इसके प्रचीन अवशेष पाये हैं। इस दशक के प्रारम्भ में यहां इन पुरावशेषों की पूजा भी होती थी।

स्कंद-भवन के मठ के साथ एक शिव-मंदिर भी था जो राजा प्रवरगुप्त ने बनाया था।

सफाकदल के आस-पास स्कंद-भवन के निर्माण होने से यह बात साफ लगती है कि राजा प्रवरसेन के कुछ ही समय बाद श्रीनगर का काफी हद तक विस्तार हो गया था।

ज्येष्ठेश्वर

'जीठ-योर' ज्येष्ठेश्वर नाम का अपभ्रंश रूप है। यह एक प्राचीन तीर्थ-स्थान है। यह गगरिबल के पूर्व की ओर पहाड़ की कोख में है। यहां कई हजार शिवलिंग थे जो बाद में मकान बनाने में इस्तेमाल किए गए। अनुमान के आधार पर कहा जाता है कि ज्येष्ठ रुद्र की स्थापना वर्तमान जीठ-योर के आस-पास ही रही हो किन्तु स्टाइन इस से सहमत नहीं। अलबत्ता कश्मीरी पंडितों को इस स्थान में जो श्रद्धा है उसको देखकर लगता है कि यह कश्मीरियों का सबसे प्राचीन यात्रा-केन्द्र रहा है। आज भी यहां एक शिवलिंग है जिसको ज्येष्ठरुद्र जानकर पूजा की जाती है। यहां जो नाग या चश्मा है, उसको ज्येष्ठ नाग कहते हैं। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि पुराना मंदिर भी यहीं पर रहा हो क्योंकि साथ इसके पानी का होना एक जरूरी बात है।

गोव अग्रहार

शंकराचार्य-पर्वत के दामन से डल-झील तक जो उपजाऊ भूमि है, वह

राजा गोपादित्य ने उन ब्राह्मणों को जागीर के तौर पर दी थी जो बाहर से कश्मीर आए थे। इस क्षेत्र को आजकल गोपदरी कहते हैं। यह शब्द गोप अग्रहार का विकृत रूप है।

थीद (आजकल का ओबराय पैलेस)

थीद जहां महाराजा हरिसिंह ने अपना महल बनाया था और जो आजकल ओबराय पैलेस के नाम से जाना जाता है, प्राचीनकाल से ही महत्वपूर्ण स्थानों में गिना जाता है। यहां महाराजा संधिमत ने बहुत से मठों का निर्माण किया था। इसके साथ-साथ इन्होंने मंदिर भी बनाए थे। अब्बुल फजल के अनुसार उस समय थीद एक सुन्दर स्थान था। यहां सात नाग (चश्मे) आपस में मिलते थे। इस समय इनके आस-पास पत्थर की बनी कुटिया है। अब यहां पुराने खण्डरों का नामों-निशान ही नहीं मिलता अलबत्ता जिन नागों का वर्णन अब्बुल फजल ने किया है, वे इस समय भी पाये जाते हैं। 'हरचरितचिंतामणि' में इन नागों को तपत: पुष्करिणी कहा गया है।

स्वरेश्वर-तीर्थ

ईशबर का दुर्गा सुरेश्वरी तीर्थ पर्वत के दामन में स्थित है और इस गांव के पूर्व में है। गांव से यह तीर्थ लगभग एक सौ गज दूर है। कश्मीर की प्राचीन पुस्तकों में इस तीर्थ का उल्लेख कई बार आया है। इस तीर्थ के साथ उन नागों का संबंध भी जुड़ा है जो ईशबर गांव में सड़क के पास मिलते हैं। क्षेमेन्द्र और कल्हण ने भी इस तीर्थ का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है। ईशेश्वर-स्थापना होने के कारण इस गांव को 'ईशबर' कहते हैं। कहा जाता है कि इस तीर्थ का निर्माण महाराजा संधिमत ने किया है। कई प्राचीन पुस्तकों में इस स्थान का नाम 'इशबोर' भी लिखा है। अब्बुल फजल ने भी इसका इसी नाम से उल्लेख किया है। इसको गुप्त गंगा भी कहते हैं। आज भी यह एक प्रसिद्ध तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। वैशाखी के दिन यहां मेला लगता है। ईशबर नाग के आस-पास आज भी इसके पुरावशेष मिलते हैं जो उन प्राचीन मंदिरों की ओर संकेत करते हैं जो यहां विभिन्न दौर में बनाए गए हैं।

सिद्धार्थ वन

सिद्धार्थ वन हारवन का प्राचीन नाम है जिसका अर्थ है छः अरहट वाला

जंगल। कहते हैं कि सुविख्यात बौद्ध-दार्शनिक नागार्जुन यहीं रहा करते थे। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि महाराजा कनिष्क के समय जो तृतीय बौद्ध सभा यहां हुई थी, उसका असली स्थान सिद्धार्थ-वन ही था। पहाड़ के दामन में एक बड़े प्रांगण में यहां बौद्धों के कई अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनमें मृण-टिकड़ियाँ, स्तूप और विहार के ढांचे शामिल हैं। अब तक सभी मानते आए हैं कि भारत में प्राप्त ये पुरावशेष अपने किस्म के एक हैं तथापि हाल में पहलगांव के निकट लिद्दर में भी ऐसे ही कई प्रकार के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं जिनके संबंध में अभी स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं है।

महाश्री

महाराजगंज में पत्थर के एक बड़े ढेर के पास बड़शाह का बनाया हुआ एक मठ है। इसमें मात्र एक कमरा है जिसमें बड़शाह की मां दफन है। इस मठ के निरीक्षण करने से यह बात साफ लगती है कि इसके निर्माण करने के लिए प्राचीन मंदिरों का मलबा इस्तेनाल में लाया गया है। इस मठ का ढांचा किसी प्राचीन मंदिर का लगता है जिसका नाम महाश्री था। यह मंदिर महाराजा प्रवरसेन द्वितीय ने बनाया था।

कालीश्री

खानकाह मौला के पास एक नाग या चश्मा है जिसको काली नाग कहते हैं। इसके आस-पास के क्षेंत्र को पहले कालीश्री कहते थे जिसका विकृत रूप वर्तमान कलाशपुर है। पहले इस नाग के पास प्रवरसेन द्वितीय ने एक मंदिर बनाया था जो बाद में गिराया गया और इसका मलबा मकान बनाने के काम आया।

काली नाग पर आज भी मेला लगता है और कश्मीरी पंडित वहां पूजा करने जाते हैं।

समदर मठ

गणपतयार की ओर से हब्बाकदल के बिलकुल सामने सोमयार का मंदिर है। यहां पहले एक मठ था जिसका नाम समदर मठ था। यह मठ राजा रामदेव

की पत्नी ने दसवीं शती में बनाया था। इसको पहले समदर मर और बाद में सेदर मर भी कहते थे।

राजमहल

बहुत खोज के बाद भी अभी यह बात स्पष्ट नहीं दिखती है कि कश्मीर-इतिहास के प्रारंभिक-काल में यहां हिन्दू एवं बौद्ध राजाओं के महल कहां पर स्थित थे। अलबत्ता यह सत्य है कि 11वीं शती में महाराजा अनन्त ने पुराने महल को छोड़कर इसके स्थान पर नया महल बनाया।

नए महलखाने के संबंध में यह सत्य है कि यह पुरुषयार मोहल्ला (हब्बा-कदल) में था। इसका उल्लेख राजतरंगिणी में यह कहकर हुआ है कि महा-राजा अनन्त ने नया महल सदाशिव मंदिर के आस-पास बनाया। सदाशिव तीर्थ आजकल का पुरुषयार मंदिर कहा जा सकता है। इससे यह बात माननी पड़ती है कि उपरोक्त महल भी मंदिर के आस-पास ही रहा होगा। बिल्हण श्रीनगर का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि महल बहुत ऊंचा था। स्टाइन के अनुसार इसकी ऊंचाई को ध्यान में रखकर यह कहना ठीक रहेगा कि इसका एक भाग लकड़ी का बना हो। यह बात इससे भी जाहिर है कि महाराजा हर्ष का वध करने के बाद जब उच्चल आक्रांताओं ने महल को जलाया तो यह देखते ही देखते जल गया—इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। महल के साथ एक बाग भी था जिसके संबंध में कल्हण कहते हैं कि अंतिम युद्ध के समय महाराजा हर्ष और उनका बेटा बाग में ही थे।

मोर-संगम

गावकदल के पास जहां चूंठि-क्वल वितस्ता के साथ मिलती है, यहां प्राचीन-काल से एक तीर्थ रहा है जिसको 'मोर-संगम' कहते हैं। यही वह जगह है जहां नये शहर की बुनियाद डालने से पहले महाराजा प्रवरसेन को वैताल के दर्शन हुए थे। डोगरों के प्रारंभिक शासन-काल तक यहां एक श्मशान घाट था।

तारापीड़ मंदिर

जामा मस्जिद के आस-पास बहुत से मंदिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं

तथापि अभी तक यह मालूम नहीं हो सका है कि इनका निर्माण कब और किसने किया था। राजतरंगिणी के अनुसार राजा तारापीड़ द्वारा बनाया गया मंदिर इसी प्रांगण में था।

जयनेन्द्र विहार

कश्मीर-इतिहास में जयनेन्द्र-विहार का विशेष महत्व प्राप्त है। यहीं वह विहार है जहां श्रीनगर में ह्वेन्त्सांग ने पहली बार विश्राम किया और यही वह विहार है जहां इन्होंने सात वर्षीय लड़के से बौद्ध-धर्म से संबंधित कुछ मोटी-मोटी बातों का अध्ययन किया। जयनेन्द्र विहार आजकल की जामा-मस्जिद के सामने था। यह विहार महाराजा प्रवरसेन के नाना ने बनाया था। सर वाल्टर लारेंस के अनुसार लद्दाख से आए बौद्ध लामा आज भी मस्जिद के पास पहुंच कर सिर झुकाते हैं। इस समय इस स्थान पर जो पुरावशेष हैं, संभवतः वे जयनेन्द्र विहार के ही हो सकते हैं। लद्दाख के बौद्ध-भिक्षु जयनेन्द्र विहार और शंकराचार्य-पर्वत चोटी को पवित्र मानते हैं।

नर परिस्तान

सड़क के पास जहां आजकल मस्जिद है, वहां प्राचीन काल में नरेन्द्र स्वामिन मंदिर था। इस मंदिर का निर्माता नरेन्द्र दत्त था। नर परिस्तान में जो पुरावशेष सुरक्षित हैं, उनकी गणाना कश्मीर के प्राचीन उपलब्ध पुरावशेषों में होती है।

कादी-कदल मस्जिद के पास ही राजा प्रवरसेन द्वितीय द्वारा निर्मित सद्-भावजी का मंदिर था। अब वहां पीर हाजी मोहम्मद की जियारत है। मशहूर शाहमीरी सुल्तान कुतुबउद्दीन भी यहीं दफन है।

ज्येष्ठसेन भैरव और विशकसेन भैरव

कालीश्री मंदिर के बिलकुल सामने पत्थर मस्जिद के घाट के पास ज्येष्ठ-सेन भैरव का मंदिर था। इसी प्रकार पत्थर मस्जिद के पश्चिम में दलाल मोहल्ला के साथ ही विशकसेन भैरव का मंदिर था। आजकल ये दोनों स्थान कब्रिस्तानों में बदल गए हैं।

त्रिभुवन स्वामिन्

सफाकदल से थोड़ी ही दूरी पर वितस्ता की बाईं ओर पत्थरों के बने एक प्राचीन मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। कहा जाता है कि इसका नाम त्रिभुवन स्वामिन् मंदिर था जो सातवीं शती में महाराजा चन्द्रापीड़ ने बनाया था। एक मुसलमान दरवेश इन पुरावशेषों के पास दफन है। आजकल यह स्थान ढगबाब नाम से मशहूर है।

खिशम् गौरीशंकर

छेचबल के साथ ही छिच-क्वल नदियां वितस्ता के साथ मिलती हैं। इस संगम पर भक्तिश्वर भैरव का मंदिर है। दसवीं शती में यहां राजा क्षेमगुप्त ने एक शिव मंदिर का निर्माण किया और इसका नाम क्षेम गौरीश्वर रखा गया। आज से चलीस-पचास साल पहले यहां पर एक प्राचीन मंदिर के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं।

विक्रमेश्वर

विचार नाग के पास ही एक मंदिर के पुरावशेष सुरक्षित हैं। ये विक्रमेश्वर मंदिर के कहे जाते हैं जो राजा विक्रमादित्य ने बनाया था। इसको बाद में गिराया गया और मलवा अन्य निर्माण-कार्यों में लगाया गया।

रानेश्वर

इसका निर्माण महाराजा राणादित्य ने किया था। कहा जाता है कि शाह-मीरी दौर में इसको गिराया गया तथा मलवा मदीन साब की मस्जिद के निर्माण कार्य में लगाया गया।

पांद्रेठन

बादामी बाग कनटोनमेंट की बाईं ओर तलाब के मध्यभाग में एक पुराना मंदिर हैं। यह मंदिर श्रीनगरी में है जो राजा अशोक के राजत्वकाल में कश्मीर की राजधानी थी। इस समय मंदिर के आस-पास लोग नहीं रहते हैं तथापि इसकी कुछ दूरी पर सैनिक बैरकें हैं।

इस मंदिर में गुंबद-नुमा छत लगा है और अन्दर एक कमरा है। मंदिर के पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर दरवाजे हैं। पश्चिम की ओर इसकी एक खिड़की भी है।

जिस तलाब में मंदिर है, वह चालीस गज चौरस है। इस में पानी तीन फीट तक ऊंचा है। मन्दिर के तलाब में निकट के नाग से पानी आता है। मंदिर हर वक्त खुला रहता है। मंदिर के संबंध में कहा जाता है कि इसका निर्माण महाराजा पृथु ने किया है। यह मूलतः विष्णु मंदिर है तथापि कुछ लोगों का कहना है कि यह मंदिर नहीं बल्कि एक बौद्ध-विहार है। किन्तु अधिकांश विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि इस मंदिर का संबंध हिन्दू मत से है और यह विष्णु मंदिर है।

(क्रमशः)

जम्मू की संस्कृति

• राजेश्वर शर्मा

साहित्य की देखरेख में संस्कृति एवं सभ्यता दोनों शब्द सृष्टि के विकास के प्रारम्भिक क्षण से लेकर प्रत्येक मानव के साथ घनिष्ठ सम्पर्क लिए हुए उभरते हैं। सभ्यता प्रत्येक देश-जाति एवं समय के साथ सम्बन्ध रखती है। इसका प्रभाव मनुष्य के शारीरिक एवं बाह्य वातावरण के साथ परिवर्तित होता जाता है। किन्तु संस्कृति सभ्यता का ही सूक्ष्म एवं व्यापक रूप है। जहां सभ्यता मनुष्य शारीरिक एवं बाह्य आडम्बरों के साथ सम्पर्क रखती है वहीं संस्कृति आध्यत्मिक मानसिक तत्वों पर पूर्ण प्रभाव रखती है। संस्कृति शब्द सम् पूर्वक करनार्थ कृञ्ज धातु से क्तिन प्रत्यय करने से सम्पन्न हुआ। संस्कृति मातृ-गर्भ में आने से पहले ही संस्कार रूप से जन्म-जन्मान्तर के साथ सम्पर्क रखती हुई मनुष्य के जन्म से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक उस जीव के देश-राष्ट्र-समाज-जाति-कुल और अपने मातृ-पितृ तथा अन्य बन्धुओं के ऊपर निर्भर है।

संस्कृति किसी भी राष्ट्र के मुख्य धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। संस्कृति मनुष्य को उन्नति-अवनति के दोनों पक्षों को पुष्ट एवं क्षीण करने में सामर्थ्य रखती है। इसका मौलिक केन्द्र मनुष्य की आत्मा माना जाता है। समग्र धर्म के सम्बन्ध से पड़े हुए व्यक्तियों के हृदय में यह मूल रूप से स्थित रहती है। देशकाल एवं वातावरण के प्रभाव से यह प्रस्फुटित होकर संसार में फैलती है। जिस राष्ट्र एवं धर्म के व्यक्ति समूह में निजी भाषा, निजी धर्म, निजी देश और वर्तमान काल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध न हो बाह्य वातावरण

और विदेशी भाषादि के प्रभाव से वह संस्कृति विकृति के रूप में परिणत होकर समस्त समाज को ही ले डूबती है।

हमारी पावन द्विगर्त भूमि में अनादि काल से वैदिक एवं पौराणिक संस्कृति का प्रभाव रहा है यद्यपि उसमें यवनादि मतमतान्तरों एवं उन्हीं की विदेशी भाषाओं के द्वारा संस्कृति में कुछ ह्रास-सा प्रतीत होता है तो भी 80 प्रतिशत व्यक्ति प्राचीन सभ्यता से प्रभावित हुए। वैदिक व पौराणिक सभ्यता व संस्कृति में पले राष्ट्र के नियमों को आज तक निभाते आ रहे हैं।

हमारी डुग्गर प्राचीन संस्कृति में पड़े व्यक्ति किसी भी भाषा को एवं किसी भी औद्योगिक क्षेत्र में व्यावहारिक क्षेत्र में, शिक्षा-क्षेत्र में, युद्ध-क्षेत्र में समस्त विश्व के व्यक्ति मात्र के आगे प्रगतिशील रहे हैं। इनकी प्रगति में विदेशों में भी गये हुए छात्रों ने अपनी दुर्लभता नहीं दिखाई। यद्यपि यही संस्कृति पदोन्नत एवं प्रबल होती हुई, विज्ञान के क्षेत्र में भी आगे बढ़ने में सामर्थ्य रखती हुई तथा बाह्य वातावरण, वैदिक सभ्यता, संस्कृति, भाषा आदि के प्रभाव से ह्रास को प्राप्त होती हुई प्रतीत होती है। सभ्यता में उन्नति करना धन की अपेक्षा रखना है किन्तु संस्कृति की उन्नति में दृढ़ एवं मानसिक आध्यात्मिक प्रबलता परमावश्यक है। आज भी हमारे द्विगर्त भूमंडल के भागों ने शुद्धिक्षेत्र देविक्ता तट तवीशी (तवी) एवं चन्द्रभाग (चिनाब), ऐरावती (रावी) आदि पवित्र नदियों को तीर्थ-भावना से संस्कृत संस्कृति समय-समय पर होने वाले व्रत-महोत्सव, पर्व-दिनों में समारोह द्वारा मनाए जाने वाले बड़े-बड़े मेलों में बढ़ती हुई उमंग से लोग वैदिक व पौराणिक प्राचीन संस्कृति के क्षेत्र में बढ़े-चढ़े दिखाई देते हैं।

यद्यपि राजनीतिक, व्यापारिक, लोक व्यावहारिक क्षेत्रों में संस्कृति को घर छोड़कर उक्त क्षेत्रों में भाग लेते हुए संस्कृति से हाथ धोए हुए प्रतीत होते हैं। किन्तु अपने घरेलू जन्म से लेकर मरण तक संस्कारों से पड़ी संस्कृति को छोड़ने में असमर्थ ही नहीं अपितु एक दूसरे की देखा देखी एवं परिस्पर्धा से अपने सामर्थ्य से बाहर बहु-द्रव्य साध्यसस्व संस्कृति के कार्यों में कभी दुर्बलता नहीं दिखाते। डुग्गर संस्कृति जम्मू प्रान्त की प्राण है। इसी संस्कृति का प्रतीक वैष्णवी मन्दिर त्रिकूट पर्वत पर विराजमान है जो समस्त विश्व में विलक्षणता एवं विशेषताओं में अग्रगण्य है। वैष्णवी तीर्थ में वैष्णव देवी का मन्दिर

चौबीस घण्टे अबाध रूप से अनेकों वर्षों से दिन-रात यात्रियों की भीड़ से भरा हुआ अहमहमिका पूर्वक दार्शनिकों एवं श्रद्धालु भक्तों की पंक्तियों को तांते में त्रिकूट पर्वत पर देखा जा सकता है। यह हमारी डुग्गर की संस्कृति रक्षा का ज्वलन्त उदाहरण है। सारे संसार के व्यक्ति किसी भी तीर्थ को इतना महत्व नहीं देते जितना कि प्राकृतिक त्रिमूर्ति स्वरूप वैष्णवी मन्दिर को दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ावा देते हुए उसके महत्व को बढ़ा रहे हैं।

उधर देविका के मूल स्रोत से लेकर विजयपुर के मध्यवर्ती छोटे से क्षेत्र में ही रहने वाले प्रत्येक तट पर महत्वपूर्ण बड़े-बड़े पर्व उत्तम तीर्थ समझे जाते हैं। और उनका वर्णन केवल दन्त कथाओं में नहीं अपितु स्कन्ध पद्म इत्यादि महापुरुषों में मुक्त कण्ठ गाया जा रहा है। यहां के प्राचीन राजाओं में संस्कृति रक्षक राजत्रिमूर्ति गुलाब सिंह, रणवीर सिंह एवं प्रताप सिंह तीनों ही डुग्गर संस्कृति की मूल भित्ति को इतना सुदृढ़ करने में सफल रहे कि जिसका स्वरूप आज प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में घर किये हुए है और उसी संस्कृति के प्रभाव से आज तक डुग्गर की संस्कृति में उच्च से उच्च जाति से लेकर क्षुद्र जातियों तक के असमर्थ व्यक्ति भी जन्म से लेकर मरण तक होने वाले समस्त वैयक्तिक-सामाजिक क्षेत्रों में संस्कृति के तत्वों में परमोत्साह द्वारा वैदिक सभ्यतानुसार चलते हुए आ रहे हैं तथापि मत-मतान्तरों के उछाले वैदेसिक सभ्यता के भ्रामक उजाले से प्रभावित होने पर भी अपनी संस्कृति से हटने के लिए तैयार नहीं। बाह्य क्षेत्र—राजनीति में भाग लेते हुए भी अपन हृदय से संस्कृति को कभी नहीं त्यागते, उनमें बैठकर यद्यपि सामाजिक सभ्यता को निभाते हुए अपने आप को सभी धर्मों में एकता का नारा और विभिन्न संस्कृति वाद के विरुद्ध अनेकों नारे लगाएं किन्तु अपने समाज में आकर घरेलू क्षेत्रों में पहले से भी बढ़कर प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए डटकर एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करते हुए कटिबद्ध होकर अग्रगण्यता प्राप्त करते हैं। अतः भारत के समग्र संस्कृति क्षेत्रों में अग्रगण्य देश काश्मीर माना जाता था। उसमें भले ही संस्कृति का विदेशी प्रभाव विधर्म शाही दबाव से दबकर आज अभक्ष भक्षण संस्कृत संस्कृतिहीन परस्पर विवाह आदि में जाति भेदादि में हीन संस्कृति-हीनता व भ्रष्टाचारित दिखाई दे किन्तु ऐसी बात हमारी डुग्गर संस्कृति में नहीं। हमारी डुग्गर संस्कृति आज भी सबसे वीरता, शूरता, सभ्यता तथा समाज की देख-रेख में अग्रगण्य है। विधर्मी शासन के दबाव में भी डुग्गर संस्कृति दिन-प्रतिदिन उभरती ही जा रही है। हमारे पतित से पतित व्यक्ति भी एकान्त में यद्यपि पतित माने

जायें किन्तु किसी भी संस्कृति-क्षत्र संबंधी कार्य-काल में कभी पीठ नहीं दिखाते और प्रत्येक संस्कृति महोत्सव में सभी कार्यव्यग्र व्यक्ति भी उसमें भाग लेने के लिए उतावलेपन से विभोर दिखाई देते हैं।

इतना ही नहीं हमारी संस्कृति के प्रभाव का सीधा सम्बन्ध प्रकृति के साथ है। प्रकृति का काल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। काल का लक्षण विस्तार-मय से छोड़कर उसके अवयव वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि आदि गिने गए हैं। प्रत्येक वर्ष में प्रकृति के चार केन्द्र माने जाते हैं। दिन-रात बराबर होने के दो केन्द्र एवं सबसे बड़ा दिन सबसे बड़ी रात होने के दो केन्द्र एवं ऋतु व मासों के प्रारम्भिक क्षण भी प्रकृति के साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं। इनमें हमारी संस्कृति के चार स्रोत, काल के चारों केन्द्र प्रत्येक बालक-बालिका के हृदय से लेकर संस्कृति के वीज प्रस्फुरण मूलक माने गये हैं। वासन्तिक नवरात्रे आते ही अबोध बालिकाएं भी बड़े उल्लास के साथ प्रथम नवरात्र से हमारी संस्कृति की प्रतिमा रूपी प्रकृति की परीक्षा के लिए शाखारोपण एवं दीवारों पर अनेक प्रकार की प्रतिमाएं बनाकर प्रतिदिन प्रातः-सायं, संध्या काल के समय गीत, नृत्य, प्रकृति के रूपरंग वर्णन सहित लोकगीतों के रूप में प्रस्तुत करती हैं। नव रात्रों में इस संस्कृति का प्रभाव सभी गांव या नगरों की परतोलिकाओं में भिन्न-भिन्न समुदाय रूप में अपने-अपने घरों में आदर्श प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होती हैं, कि प्रत्येक मनुष्य को परिवार-शिक्षा, ग्राम-शिाक्षा एवं नागरिक-शिक्षा के वातावरण की एकता में पिरोने के लिए पत्थर, मिट्टी व शाखांकुर वृक्षादि सोना, चाँदी, पीतल, लकड़ी आदि की मूर्तियों से लेकर शिशु, बाल-वृद्ध, अपना-पराया, रंक-राजा, सखी-सहेली, तक पुण्य संस्कृति के रूप में राष्ट्रीय भित्ति की नींव को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाने के लिए प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती हैं। इस प्रकार दोनों वासन्तिक एवं शारद नवरात्रों के अतिरिक्त कालिदास के मेघदूतोक्त पद्यांस—" "**अषाढ़स्य प्रथम दिवसे**......" इत्यादि पंक्तियों को प्रत्यक्षीभूत उदाहरण के रूप में धर्म दिन (धम्मदें) महोत्सव को प्रारम्भिक क्षण छोटे से लेकर बड़े तक घटकपाल (घड़े के बिलों) को लेकर किसी के घर के देश में या एकान्त बाग-बगीचे में अपने-अपने बन्धुओं के नाम पर बिल पृथ्वी में गाड़कर ऊपर से मिट्टी गोबर आदि से लेपकर सफेदी बगैरह द्वारा प्रत्येक घटकपाल को अनेक प्रकार के रंगों से रंगती हुई उनके मध्य में सबसे बड़ा बिल स्थापित करके उसको धर्मराज (धम्मोराड़ा) बनाकर उसकी

जलसिंचन आदि की देखभाल सबके लिए अनिवार्य होती है। बाकी राड़े राड्गन सभी कन्याओं के अपने व्यक्तिगत भिन्न होते हैं। एवं उनकी देखभाल भी व्यक्तिगत होती है। और उनके गीतों में एक मास पहले ही धर्मदिन के समय सायं-संध्या काल में कालिदास की नवां प्रत्यासत्ति (सावन की समीपता) को प्रस्तुत करती है यह गीतिका—

उड्ड मल्ल कुञ्जडीए मढिए सौन आया ए आहो..." इत्यादि ।।

इत्यादि डारा कालिदास कालीन संस्कृति के रूप में नवां प्रत्यासत्ति के केवल निर्जीवता को ही सामने नहीं रखा अपितु सजीव एवं सबीज प्रकृति के अंकुरित रूप को प्रस्तुत करने के लिए उन घटकपालों में शारद् सस्य (खरीफी फसल) के समस्त उपलब्ध बीज बोकर उनकी रक्षा के लिए सभी बालिकाओं को रहना पड़ता है। और प्रत्येक सप्ताह के धर्म दिन बार में सायं काल किसी जलाशय पर उपरोक्त पंक्ति को दोहराती हुई पंक्तिबद्ध होकर प्रीतिभोज के साथ इस समारोह को मासभर चलाकर मासान्त के दूसरे दिन श्रावन की पहली प्रविष्ट को ऋतु (रोट्ट) महोत्सव को मनाती हैं, जिसे बड़ा रोट्ट कहा जाता है।

इतना ही नहीं, इससे पूरे छः महीने के बाद आग्रहायन (मार्ग शीर्ष) मास के समाप्त होते ही पौष की पहली तारीख को उत्तरायण प्रारम्भ सूचक तपः प्रत्यासत्ति (माघ मास की समीपता) के महोत्सव का आरम्भ करते हैं। इसमें बालक एवं बालिकाओं के भिन्न-भिन्न वर्ग प्राचीन संस्कृति स्वरूप मुनि बालकों की संस्कृति स्वरूप समिधा हरण एवं अरणी—लकड़ी विशेषकर प्रस्तुतिकरण को प्रत्यक्ष रखते हुए प्रति दिन सायं कामना सुरी भाई कामना सुरी, "हेरणी पाई हेरणी-हेरणी—" इत्यादि पंक्तियों को दोहराते हुए प्रति घर से लकड़ी, उपले इत्यादि मांगते हुए दिखाई देते हैं। इस आरुणी महोत्सव को लोहिता, लोही, लोहड़ी कहा जाता है। इन तीनों शब्दों का नाम रक्तराग रंजित संध्या के नाम के बोधक हैं। और इसको आरुणि महर्षि बालक ने प्रतिवर्ष उत्तरायण आरम्भ की संस्कृति और यज्ञों की प्रारम्भिक भित्ति की नींव के रूप में प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त हमारी डुग्गर संस्कृति के स्तम्भ अनेक प्रकार के हैं जैसे

कि वैसाखी, घगवाल का नरसिंह मेला महोत्सव, उधमपुर एवं थ्याल के जगन्नाथ पुरी का मेला, 13 अषाढ़ एवं 13 पौष, कार्तिक पूर्णिमा को झिड़ी (बाबा जित्तो) इत्यादि। मेलों के अतिरिक्त प्रति रविवार, मंगलवार एवं नवरात्रों के दिनों बाबा में लोग देवी के दर्शन हेतु वहां आते हैं। शिवखोड़ी और शुद्धमहादेव में अधिक से अधिक संख्या में लोग जाकर भगवान के दर्शनों से लाभान्वित होते हैं। अत: इन मेलों, उक्त महोत्सवों का सीधा सम्पर्क हमारी वैदिकी एवं पौराणिक संस्कृति के साथ है। अतः हमारी डुग्गर संस्कृति प्रत्येक अक्ष में शास्त्रीय एवं वैदिक संस्कृतिमूलक है। हमारी संस्कृति कर्म-प्रधान संस्कृति है।

चिरन्तन कश्मीर

• मोतीलाल शास्त्री 'पुष्कर'

कश्मीरी भाषा : उत्पत्ति और विकास

कश्मीरी भाषा के सम्बन्ध में शोधकर्ताओं में अग्रणी ग्रियर्सन महोदय ने सारे भारत का भाषायी सर्वेक्षण किया है । इनके मुताबिक कश्मीरी की उत्पत्ति दरदी से हुई है । उन्होंने शब्दों का साम्य प्रस्तुत कर अपना मत व्यक्त किया है। उनके आधार को लेकर अनेकानेक दिग्गज विद्वानों ने अपना मत इसी के साथ मिलाया है । यह कोई जल्दबाजी में कही हुई बात नहीं । यह बिना परखे प्रकट की हुई विचारसरणी नहीं जिसे झुठलाया जा सके । इस दररी विवेचन के साथ विश्वविख्यात भाषाशास्त्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तथा सिद्धेश्वर वर्मा जैसे मूर्धन्य विद्वान एक मत हैं। इस दृष्टिकोण को अमान्य ठहराना अशोभनीय है, जल्दबाजी है ।

कुछ अन्य विद्वान् यह सिद्ध करने की भरसक कोशिश में लगे हैं कि ग्रियर्सन का मंतव्य अवैज्ञानिक है । उनका कथन है कि वाक्यरचना का विश्लेषण करके स्पष्ट होता है कि कश्मीरी की उत्पत्ति वैदिक संस्कृत से हुई है । केवल मात्र शब्द-साम्य काफी नहीं ।

इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत सारी भारतीय भाषाओं में समृद्ध है और अग्रजा भी है । इसकी महिमा जितनी गाई जाय कम है । इसकी श्रेष्ठता तो सारा विश्व स्वीकार करता है। रामायण और महाभारत तो कुल ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत हैं किन्तु यहां भाषाई अध्ययन की दृष्टि से कश्मीरी के परिप्रेक्ष्य में विचार करने की आवश्यकता है ।

तीसरा वर्ग उन महानुभावों का है जो इस भाषा का सम्बन्ध अरबी और फारसी से जोड़ने की प्रबल इच्छा से तथ्य और कल्पना को मिलाकर अपना मन्तव्य सिद्ध करते हैं। उनके विचारों को भी सामदर करना विद्वता का ही लक्षण है।

उत्पत्ति

भाषा जन सुमुदाय की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। जन समुदाय का सम्बन्ध स्थान विशेष के जनों से है। कश्मीरी बोलने वाले कश्मीर घाटी, पाक अधिकृत कश्मीर के कश्मीर भाषी भाग, द्रास का इलाका, पुंछ के कुछ हिस्सों एवं डोडा ज़िला के अधिकतर भाग में आबाद हैं। इनकी संख्या 40 लाख के लगभग है। यह सारा क्षेत्र कश्मीर घाटी से जुड़ा हुआ है। पर्वतों के कारण घाटी से कटे होने पर भी इन क्षेत्रों के लोग सदैव व्यापार, प्रशासन एवं परम्परा से आपस में जुड़े हैं। यह सारा क्षेत्र आर्यवर्गीय लोगों ने बसाया है, बढ़ाया है। आर्यों से अभिप्राय केवल वैदिक आर्यों से ही नहीं अपितु, उन सभी वर्गों से है जो विशाल आर्य परिवार के साथ जातीय दृष्टि से सम्बन्धित रहे हैं। इनको आजकल नाग, आर्य, पिशाच, डोकपा, नूरिस्तानी आदि नामों से इतिहासवेत्ता स्मरण करते हैं।

वास्तविकता यह है कि यह भाषा न तो संस्कृत से जन्मी है न दरदी से, न ही इसे फारसी-अरबी की बेटी कही जा सकती है। यह तो हमारी प्रिय मातृभाषा कश्मीरी है। इसे बिल्हण ने जन्मभाषा कहा है और प्राकृत एवं संस्कृत से इसे भिन्न माना है। संस्कृत और फारसी के विद्वान स्व-स्व भाषाई अनुराग के कारण जिन-जिन नये सिद्धन्तों को जन्म देकर हमारे ज्ञान की अभिवृद्धि करना चाहते हैं उन्हें इस बात को भी ध्यान में रखने का कष्ट अवश्य करना चाहिए कि गांवों में रहने वाले, नगरों में निवास करने वाले, पर्वतों की तलहटियों और चोटियों पर जीवनयापन करनेवाले जिस कश्मीरी भाषा को बोलते हैं वह कश्मीरी है अन्य कोई भाषा नहीं। अन्य भाषाओं के शब्दों की उपस्थिति को आधार मानकर सिद्धान्त स्थापित करना सरल है क्योंकि सारी भाषाओं की शब्दराशि अन्य-अन्य भाषाओं के रत्नों से भरी पड़ी है। फिर भी प्रत्येक भाषा का स्वत्व एवं स्वरूप उसका अपना-अपना होता है।

घुमक्कड़ आर्य टोलों तथा वैदिक आर्यों से लेकर स्वातंत्र्ययुग के सुललित

अरुण के नवोदय तक जो इतिहास के पन्ने लिखे गये उन्हीं का समग्र स्वरूप वर्तमान कश्मीरी समाज है और उन युगों की थाती के रूप में जो चिरस्थायी शब्दराशी कश्मीरी भाषा के रूप में हम अपने हृदयों में संजोये हुए हैं वही कश्मीरी भाषा की श्रीकलितकामिनी का शृंगार और अन्तर और बाह्य स्वरूप की रचना करते हैं। इस समाज के स्वरूप को ईरानी, मध्य एशियाई, तुर्क, पठान आदि ने भी अपना-अपना अंशदान प्रदान किया है। यह समाज उपनिषदों के अद्वितीय आध्यात्मिक दाय को बिसरा नहीं सकता न ही पुराणों के चमत्कारिक कथानकों की काल्पनिक उड़ान से मुँह मोड़ सकता है।

संभवत: इस भाषा का सूत्रपात तब हुआ जब ऋषियों ने संसार को अनुपम वैदिक थाती प्रदान करने का संकल्प भी नहीं किया था। इसीलिए जब वेद लिखे गये तो उनकी भाषा और हमारी जनभाषा का उस युग का शब्द समूह एक ही लगता है। पहले भाषा थी तब साहित्य की सृष्टि हुई। परमोच्च ज्ञान के पुँज ऋषिवरों ने जिस भाषा में ऋचाएं बांधी थीं उसी भाषा में घुमक्कड़ों ने लौकिक व्यवहार किया तो हमारी भाषा के जन्मदाता ऋषियों, मुनियों की भाषा बोलने वाले चरवाहे और गड़रिये भी हैं। नौ बन्धन की चोटी के साथ अपनी नावों को बांधने वाले हंस भी है, जलीय आपदाओं से अपनी रक्षा करने वाले अग्नि-साधक भी हैं, सूर्य और चन्द्र का दर्शन कर उल्लास और विलास का भरने वाले भी हैं। इसीलिए यह अखंडानंदमयी चिन्मयी भी है। स्वयं-स्फूर्त आदिमानव की ध्वनि रूप शब्दराशि भी है। हम इसे चाव भरें, इसे अपनाएं, इसे जन्म भाषा कहें, इसे संजोए और संवारें। तभी हम इसकी व्युत्पत्ति और विकास के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारी समस्या भी स्वयं-समाधान बनेगी।

इस भाषा की शब्दराशि गढ़ी नहीं गई है। स्वत: रूप धारण किये हैं। इसकी जन्मदात्री यहां की प्रकृति है। इसकी गढ़न अनगढ़ पत्थरों के सामान हजारों ठोकरें खा-खाकर 'काजवर' शब्द के समान रूप धारण किये रत्नकण है। ये शब्द हमारी जीवनधारा के आधार हैं।

इसका जन्म छोटी-छोट घाटियों की गोद में, पहाड़ियों की चोटियों पर, गुफाओं की चहारदीवारी के अन्दर, नदी-नालों के किनारों पर, घने वनों, उपवनों में, खलिहाने-खेतों में हुआ है। यहां के शीतल वातावरण के कारण

उच्चारण-अंगों की कार्यक्षमता विशेष ढंग की होती है। इस हेतु शब्दों की गढ़न भी विशेष रूप धारण करती है और कभी-कभी यूरोपीय भाषा परिवार के निकट-सी शब्दाकृतियाँ जन्म लेती हैं। जैसे जूता और शू (shoe) एक ही रूप से बने हैं। इसके कई सामासिक शब्दों का स्वरूप फारसी ढंग पर हुआ है।

महातम प्रकाश, बाणासुरवध और माता लल्लेश्वरी के बारव एवं श्रीनन्द ऋषि के श्रुक तो इसके साहित्यिक स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं न कि इसके जन्म पर प्रकाश डालते हैं। जन्म तो तभी हुआ जब मानव ने इस धरती पर जन्म पाकर मां के स्तनों का पान आरंभ किया। मनुष्य के जन्म और विकास की कहानी ही इस भाषा के विकास की कहानी है। वास्तव में उच्च साहित्य रचना के लिये सदैव यहां भी संस्कृत को ही चुना गया है और लौकिक व्यवहार के लिए जो भाषा प्रयोग में लकड़हारे ने, मछुवे ने, शिकारी ने यहां लाई तो वह कश्मीरी भाषा कल जन्मी या गोद ली गई भाषा नहीं; वह तो प्रौढा, प्रबला, घर गृहस्थी की चिरन्तन कश्मीरी भाषा है। यह फेरन के 'नोर' (नाड) नाल, 'कछ' (कक्ष), 'वअर', 'लाद', 'सुकन' 'कपटुन' के रूपों से परिचित कश्मीरी मां है। साहित्य रचना के प्रमाण तो लिखित रूप में हमारे पास आज नहीं किन्तु यह बात स्पष्ट है कि युगों-युगों से लोगों ने इसी में गीत गाये होंगे और बुढ़िया नानी ने इसी में बच्चों को सुलाते-सुलाते लोरियां गाते-गाते परी कथाएं सुनाई होंगी। इसी में कितने ही लोकनृत्य लोगों ने खुले आकाश के तले बैठ कर देखे होंगे तो आज हम उस थाती की कल्पना तो कर सकते हैं। यह सारा साहित्य ही कश्मीरी भाषा है।

यहां उन कुछेक शब्दों का समावेश है जो संस्कृत कोशों में या अन्य किसी भाषा के शब्दकोशों में प्राप्य नहीं। यह इस बात का प्रमाण है कि कश्मीरी सदा अपने स्वत्व और स्वरूप को बनाये रखने में सफल हुई है। इसने संस्कृत को स्थानीय संस्कृत का रूप दिया। वास्तव में यह कश्मीरी का अपना शब्द भंडार है। ऐसे अनेक शब्दों की संज्ञा कश्मीरी भाषा में विद्यमान है और कश्मीर में रचित संस्कृत साहित्य में भी।

आदिमयुग—कुछेक शब्दों की व्युत्पत्ति

चोंग—दीपक। चार अंगों का समूह। यह शब्द कश्मीरी समाज में तब

प्रारंभ हुआ जब पहली बार मानव ने इस चीज का आविष्कार किया और बार-बार याद करता गया कि मुझे स्थायी प्रकाश के लिये चार चीजें चाहिए। जब एक स्थान से दूसरे स्थान तक इस आविष्कार की बात पहुंची होगी तो लोगों ने खुशियां मनाई होंगी। यह है कश्मीरी के अत्यन्त प्राचीन होने का प्रमाण जितना 'चोंग' प्राचीन है उतनी ही कश्मीरी भाषा भी प्राचीन है। शायद दीपक बहुत बाद का शब्द है। तेलपूर्ण बाती एवं ज्योत वाले इस दीपक और मिट्टी-पात्र की कितनी महिमा !

हंस—'हाँज'

हंस नाविक। स को ज। शायद ही भारत की अन्य किसी भाषा में नाविक के लिये हंस शब्द का प्रयोग हुआ है। यह उस युग से प्रचलित है जब से नौबन्धन की चोटी के साथ नावें बांधी जाती थीं। संस्कृत का हंस आकाशीय है और कश्मीरी का जलीय।

कदल

कदल— पुल। कदल यानी शहतीर। पुराने जमाने में नदी-नालों को पार करने के लिये कदल बिछाये जाते थे। प्रगतियुग में पुल बनाये गये। नाम वही शहतीर वाला रहा। यह आदिकाल की बात है। जरा संस्कृत में कहीं पुल के लिये कदल का प्रयोग ढूंढ़िये। जब आर्यों की स्मृति में उनकी बस्ती में पुल बना तो वह आर्य कदल, 'अल्य कदल' कहलाया। आज भी गांवों में ऐसे शहतीर पुल मौजूद हैं। विवाह के अवसर पर पुल पार करने से पहले विवाह पार्टी के यजमान से बलि मांगी जाती है और वह कुछ दक्षिणा देकर इस विधि को पूरा कर जलदेवता का आशीष प्राप्त करता है। इसे 'कदलतार' कहते हैं।

गलवान

पशुपालक। घोड़ों के रेवड को पालने वाला, चराने वाला। आजकल इसे घोड़ों को चुराने वाला अर्थं लगाया जाता है। गल (कंठ), वान—वाला। चरते-चरते दूर गये हुए घोड़ों को ऊंची आवाजों दे-देकर वापिस बुलाने वाला, गला फाड़-फाड़ कर बुलाने वाला। यह आदिमयुग के मानव के गोचर-जीवन का स्मारक है।

वांगुजवोर

किराया चुका कर पराये घर में रहना। यह शब्द कश्मीरी भाषा का है। संस्कृत या अन्य किसी भाषा से लिया गया नहीं है। यह तब की बात है जब अपने-अपने गांवों और पुरों में रहना सुरक्षा और स्वाभिमान की बात रही होगी। जब किस कारण से लोग दूसरी बस्ती में रहने लगे तो तत्सम्बन्धी शब्द ने जन्म लिया। इससे बढ़ कर क्या प्रमाण हो सकता है कि कश्मीरी भाषा चिरन्तन युग से अपनी सत्ता संभाले हुए है। इसी पर वांगुज (किरायेदार) भी बना है। वा + अंगु + ज + वोर। संस्कृत में किरायेदार के लिये मुझे कोई शब्द याद नहीं आ रहा है।

बुमसिन

कीड़ा, जो भूमि में जन्मा होता है। बन्य—चिनार वृक्ष। भूमि—आधार। अर्थ—आश्रय।

समावार

(क्षीर चाय) शीर चाय या कहवा चाय बनाने के लिये प्रयुक्त केतली जैसा पात्र जिसके नीचे एक तिहाई हिस्सा 'स्टेंड' के रूप में होता है। अग्नि-नली मध्य में होती है जिस में अंगारे डाले जाते हैं। ऊपर ढक्कन।

यह कश्मीर से लेकर रूस तक सारे मध्य एशिया में चाय बनाने का पात्र है। मैकसिम गोर्की ने 'मां' उपन्यास में सोमेवार का प्रयोग किया है। मध्य एशिया के साथ कश्मीर का संबंध प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह किसी उस्तकार (वास्तुकार) की अमर भेंट ही माननी चाहिए। इसके गुणों के कारण आजकल दूर-दूर तक इसके लिये मांग बढती जा रही है।

सम् + आ + वार तो कश्मीरी का सुन्दर शब्द है। वार यानी ढका हुआ।

कश्मीरी में 'ठूल'—मुर्गी का अंडा शब्द मिलता है। इसके साथ-साथ प्रायः बांग —भंगी, पूत—पुत्र, कोकुर— कुकुट, मुअर—मठ शब्द मिलते हैं। इनमें प्रायोपवेश शब्द का प्रयोग कल्हण पंडित ने किया है। ठूल कुकुर शब्द हमें याद दिलाते हैं वह युग जब मुर्गीपालन कश्मीरी समाज में प्रचलित था। यह शब्दराशि उन लोगों की है जिन्होंने कश्मीर बसाया है। यह सारी स्थूल सम्बन्धी बातें हैं।

शायद अहिंसावाद के प्रभाव में इनको हम भूल गये । गुप्तों द्वारा यहाँ भारतीय मूल्यों की स्थापना भी एक कारण हो सकता है । विधि-निषेध का भी यहीं से प्रारंभ होता है ।

डेज्यहोर

विवाह के अवसर पर कन्या को दिया जाने वाला दाय । यह आभूषण हमें बहुत पहले का समय याद दिलाता है । दित्य यानी पिशाच सम्बन्धी; होर माने युत, युगल । यहां ग्रियर्सन महोदय का सिद्धान्त सार्थक हो जाता है । इसी बात की ओर सोमदेव इस मंगल श्लोक में संकेत करता है :

इदं गुरुगिरीन्द्रजा प्रणायमन्दरा-दोलनात्
पुरा किल कथामृतं हरमुखाम्बुधेरुद गतम् ।।

यहां पैशाची भाषा के जन्मदाता हरमुख का स्मरण किया गया है । इसी हरमुख को लांघ कर पैशाचीभाषी आर्य घाटी में प्रविष्ट हुए हैं । यहां हिमालय को हिलाने की बात भी कही गई है । यह सारा एक जन-आन्दोलन आव्रजन का संकेत है । सोमदेव ने गुणाढ्य की पैशाची में लिखी 'बृहत्कथा' को ही संस्कृत में कथासरित्सागर में प्रस्तुत किया है ।

नगेन्द्रजा-प्रणय तो उमा (कश्मीरी घाटी) का आकर्षण का सूचक है । इन तीनों शब्दों गिरीन्द्रजा प्रणय, मन्दरादोलन, हरमुखोद्गतम् को महत्व प्राप्त है । सोमदेव आज से एक हजार वर्ष पूर्व हुए हैं ।

यही पैशाची प्रभाव डेज्यहोर में प्रकट है । अन्य आभूषण का चलन बहुत बाद में हुआ । यह एक मात्र कश्मीरी संस्कृति की निशानी है । यहां के संस्कृतज्ञों ने डेज्यहोर के लिये टंकण प्रयुक्त किया है । आज हम यदि डेज्यहोर के लिये 'ओरिजन' संस्कृत में ढूंढने लगे तो बुद्धि चकराती है ।

दान—चूल्हा

दान भी उसी युग का है जब मनुष्य खुले आकाश के तले बैठकर आग जलाता था तो उस आग को दहन कहा गया । चूल्हा, लंगर, चौका, मलहार, पाकशाला जैसे शब्द बाद में प्रचलित हुए ।

सुंबरान छुस

माने संभरात्रि। सम+भर वेद में मिलता है। इस क्रियापद का प्रारंभ वैदिक काल से पूर्व चला आ रहा है। वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग किया गया है। अर्थ—चुनना, अंबार लगाना और घर पहुंचाना है।

हरुन

हुरान छु—हयते —बढता जा रहा है। अग्नि बढती जा रही है। 'हयंते जातवेदा:' ऐसा वेदों से आया है। कश्मीरी में धन की बढत, अनाज की अधिकता के साथ इसका सम्बन्ध है।

युप

युप-युप —बाढ़ आना। कश्मीर में जब वनभूमि से लठ्ठे बरसात के बहाव से बहाये जाते हैं तो बाढ की प्रचंडता के लिये यूप शब्द का प्रयोग होता है। वैदिक में यज्ञ का स्तंभ 'यूप' कहलाता है। यह अन्तर साफ बतलाता है कि वैदिक और कश्मीरी अपने-अपने स्वरूप में पहले से ही बढती चली आ रही है। यज्ञ में अग्नि और बाढ़ में जल की उपस्थिति यूप से सम्बन्धित है।

फालना वुन

लकड़ी फाड़ना। लकड़ी का भाग। वेद में जोतने के लिये फाल का प्रयोग मिलता है। अलफाल, हलफला (अलबान्य हलपाणि) जैसे शब्दों का सम्बन्ध जोतने से है।

कुछ अन्य शब्द

चुच्य वुर—उरु (दान्त) दान्त। नीलयतपुराण में दान्त शब्द इस्तेमाल हुआ है क्योंकि नीलयतपुराण के रचयिता पर कश्मीरी भाषा का प्रभाव दिखलाई देता है।

क्या कश्मीर के अन्यान्य संस्कृत विद्वान और रचनाकार इन शब्दों से अपरिचित थे जो उन्होंने अपनी रचानओं में इन्हें प्रयुक्त नहीं किया है ? नहीं, बात यह है कि वे इन को संस्कृत शब्दों के बदले कश्मीरी शब्द मानते आये हैं ।

रही बात संस्कृत के हजारों तत्सम और तद्भव शब्दों की, वे तो सारी भारतीय भाषाओं में पाये जाते हैं । वे हमारे उन पूर्वजों की देन है जो इस उपमहाद्वीप में फैले हुए थे । उन शब्दों को बंगाली कहिये या पंजाबी, गुजराती कहिये या मराठी, वे हमारी, हम सब की साझी थाती है । उन्हीं शब्दों को संस्कृत भी कह सकते हैं और कश्मीरी भी । उन्हें हिन्दी भी गिन सकते हैं तो उर्दू भी । यह भारतीय भाषाओं की आम शब्दराशि है जिसे प्रत्येक भारतीय भाषा में पाया जाता है । चाहे वे उत्तर की हो, पश्चिम की हो या पूर्व की । इन्हीं शब्दों को आचार्य पाणिनी ने संस्कृत कहा । इन को केवल मात्र संस्कृत कह कर हम उनके प्रति अत्याचार कर रहे हैं और इन्हें लोगों की नज़रों में अजनबी बनाते हैं ।

जिस प्रकार आकाशवाणी शब्द सारी भारतीय भाषाओं का साझा शब्द है वैसे ही यह शब्दराशि भी सबकी साझी राशि है । इसी प्रकार आज़-कल राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री आदि जैसे शब्द भी प्रचलित हो रहे हैं ।

प्रारंभ में इसी लेख में अर्थों की भिन्नता की बात चल पड़ी । यह अर्थों की भिन्नता क्योंकर दिखलाई पड़ती है । कश्मीर शीतप्राय है । यहां की प्रकृति की कोख से जन्मी और बढ़ी हुई यह भाषा हर दृष्टि से स्थानीयता को समेटे हुए है जो हर दृष्टि से भारतीय होकर भी भारतीयता के कश्मीर स्टाल के नाम से उभर कर सामने आती है ।—इसी प्रकार शैलमार, बाल, बालादरी, शिशर, गंठ, गुण, मनन जन्मे हैं ।

यही शब्दराशि वेदों में प्रयुक्त होने से वैदिक हुई । पहले भाषा थी तो आचार्य पाणिनी ने संस्कृत नाम दिया, समय-समय पर और भी नाम पड़े । इनमें आर्षा, भारती, आर्या, वाणी, सरस्वती, ब्राह्मी, शारदा, काश्यपी, हिन्दी और हिन्दुस्तानी नाम भी शामिल हैं । काश्यपी एवं भारती मेरी दो मातृ-भाषायें हैं ।

कश्मीरी शब्दों से संस्कृत की भरपाई हो सकती है। लौकिक शब्दों के अभाव में संस्कृत अधूरी लगेगी तो पूरक रूप यह भाषा प्रदान कर सकती है। संस्कृत अधिकतर साहित्यिक हो गई, कश्मीरी ज्यादातर व्यावहारिक रही।

विकास

आर्यों के विषय में इतिहास बताता है, कि वे रूस के दक्षिण भाग यूराल से चलकर विश्वभर में फैल गये। वे ही आर्य टोलियां विभिन्न कालखंडों में कश्मीर में भी आकर एक समाज के रूप में उभरीं। अलग-अलग दिशाओं से कश्मीर में अलग-अलग युगों में प्रविष्ट हुए, ये लोग ही कश्मीरी कुटुंब बन गये, कश्मीर घाटी से बाहर पास-पड़ौस के भाषियों से मेल-मिलाप स्थापित करने में सफल हुए। इन पर वैदिक आर्यों की सभ्यता और संस्कृति की झलक सदैव देदीप्यमान रही, कुछेक अर्धसभ्य वर्ग तो इस समाज के दृढ़ स्तंभ और स्थिर आधार सिद्ध हुए।

सबको मिलाकर बना यह समाज समय-समय पर वैदेशिक असर में आता रहा, विदेशी प्रभाव के तौर पर ईरान और यूनान के प्रभाव का उल्लेख करना उपयुक्त है। सर्वप्रथम ईरान ने अपनी सत्ता का विस्तार किया। अकेमेनिडस साइरस ने 558-530 ई. पू. तक वर्तमान पाकिस्तान के (बलोच्चस्थान) बिलोचिस्तान उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त पर अधिकार कर लिया था। तदन्तर डेरियस महान् के शासनकाल 522-486 ई. पू. में भारत फिर ईरानी साम्राज्य के प्रभाव में आया। इसके पश्चात् 327-323 ई. पू. में यूनानी आक्रमण हुआ जो वर्तमान पाकिस्तान पंजाब तक छाया रहा। इस कालखंड में कश्मीर पर भी इन विदेशी शक्तियों का प्रभाव पड़ना असंभव न था।

ईरान, भारत, यूनान और रोम की भाषाओं के भाषाई अध्ययन से विदित होता है कि यह सारे समुदाय आपस में सम्बन्धित रहे हैं और यह सम्बन्ध सदा कमोबेश बना रहा। आर्षमेधम, सुक्रतुस्, पैथ्यगोरस जैसे शब्द तो ऋग्वैदिक जैसे ही लगते हैं।

इसी प्रकार पारसीक, बल्हीक, जिन्द अवेस्ता, यजदान, हुरमज्ज भी इसके साक्ष्य हैं। इसके अतिरिक्त पारिवारिक नाम आदि भी इसी बात के गवाह

हैं। यह युगों-युगों से चला आ रहा आर्य परिवार का साम्य हमारी भाषा को भी यत् किंचित् अपने साथ जोड़ता है।

मध्य एशियायी प्रभाव बड़े पैमाने पर कनिष्क के साथ कश्मीर पहुंचा। ईस्वी 78 में उसकी स्थिति स्वीकार की जाती है। उसने मथुरा से लेकर मध्य एशिया तक साम्राज्य विस्तार किया। उसके ही कारण बौद्धमत मध्य एशिया एवं चीन तक फैला। कुशान साम्राज्य की सीमायें भारत, चीन, ईरान और रोम तक फैली हुई थी। उसके साम्राज्यकाल में बौद्धधर्म की तीसरी परिषद का आयोजन भी कश्मीर में किया गया।

अशोक के तृतीय पुत्र का शासन कश्मीर पर रहा।

273 ई. पू. से लेकर ई. 600 तक कश्मीर बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा। इसी प्रकार तैमूरलंग 1399 में, बाबर 1526 में तथा हुमायूँ 1556 में पंजाब के क्षेत्र में फैले और अपना प्रभाव डाला।

इसके अतिरिक्त ललितादित्य का दौर हमारे सामने है। उसने अफगानिस्तान समेत सारे भारत पर एवं तुर्किस्तान के कई इलाकों पर अपना अधिकार जमाया था। वह स्वयं एक चिरस्मरणीय अभियान की अगुवाई करता हुआ इसी मध्य एशिया के लोगों का हुआ। कश्मीर की देन इन्हें देकर वहीं सदा के लिए संसार से विदा हुआ।

तिब्बत और लद्दाख के साथ यहां का सम्बन्ध तो सर्वविदित हैं। बुकचा इसका प्रमाण है।

14वीं शती के प्रारंभ में बुलबुल शाहसाहिब अपने शिष्यों समेत वहां से कश्मीर आया और यहां का ही हुआ। यह सारा इतिहास कश्मीरी भाषा का इतिहास है। इसकी बनावट का, इसके खजाने का इतिहास है। इसके जीवन की गाथा है।

कश्मीरी भाषा का प्रभाव-क्षेत्र ही कश्य+मीर कश्यप भूमि की सीमा है। इसका सांस्कृतिक विस्तार दिति, अदिति, सुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, देव, दानव, देवलोक और परीलोक पर भी छाया है। यहां इस बात को अंकित करना नितान्त आवश्यक है कि गुप्तों ने भारतीय स्वर्णयुग में यहां भी सुव्यवस्थित एवं

सुसंगठित धर्मव्यवस्था और समाज-व्यवस्था का जाल बिछाकर कर्म कांड, ज्ञानकांड एवं उत्सव-महोत्सवों के रूप में नवीन रचना कायम की, इस समय के शब्द—न्यास, प्रास अभी भी प्रचलित हैं।

ललितादित्य ने अत्रिगुप्त आदि विद्वान एवं कलाकार जगह-जगह से यहां लाये, वे अपने साथ वहां से काफी कुछ लाये, यह सब ही कश्मीरी भाषा है।

मुगल, पठान, सिख, डोगरा दौर तो छीना-झपटी का दौर-दौरा साबित हुआ। एक दूसरे को धकेलकर अपने पैर जमाने की ही फिक्र इस युग का प्रमुख लक्षण है। इस युग ने कुछ कड़वाहट, कुछ मिठास भी हमारे शब्द कोश में भर दिया।

इस राजनैतिक वातावरण के अतिरिक्त जिस वैदिक, औपनिषदिक, पौराणिक, बौद्ध, शैव, शाक्त, इस्लामिक, सिख आदि विचारधाराओं को हम जीवन धारा का अंग बताते हुए आगे बढ़े वही कश्मीरी का विकासक्रम है।

ऋषि संप्रदाय और मां ललना के अतिरिक्त सन्तों, पीरों और गुरुवरों की वाणी भी इसी वाणी में सन्निहित हैं।

बड़शाह जैसे न्यायप्रिय बादशाह और शिर्यभट्ट जैसे दुरन्देश समाज-हितैषी तो इसके गुणों की खान हैं। इन सबके दाय को संकलित कर ही कश्मीरी के ललित और कलित कलेवर और प्राण समुदाय का स्वरूप सिद्ध होता है।

यही सब समेटकर हमने स्वातन्त्र्य युग की शुरुआत की। इस युग के कर्णधारों में शेख साहिब के नेतृत्व में जिन उदारमना महानुभावों ने इसको संबल बनाकर स्वीकार करके आजादी के सूर्य को जन्म दिया उन सब के कारण हमारा और हमारी भाषा का सुभविष्य बनता जा रहा है। हम इस नवक्षितिज 'निव होरेजन' का स्वागत करते हुए इस भाषा की श्रीवृद्धि की कामना करते हैं।

इस क्रम से विचारे करें तो निम्न शब्दावली, वाक्यरचना एवं प्रहेलिका समूह हमारे सामने आते हैं :—

1. **शोक तु पुन्दसुन (वेदिक)**

सूतिका तथा पुंसवन नामक एक वैदिक संस्कार।

2. **उद्दालकुन्य चंड़ (औपनिषदिक)**

उद्दालक नामी शान्तात्मा ऋषि की क्रोधी पत्नी। पति-पत्नी में ठन जाये तो बुजुर्ग लोग इसका उदाहरण देते हैं।

3. **रुम ऋ्शयुन आय**

रोम नामक ऋषि की तरह तुम्हारी आयु लंबी हो।

4. **जातस्मर**

पुराने जन्म की स्मृति जिसे हो।

5. **यम्बुरजल**

प्रकृति सौन्दर्य का प्रभाव। इन्दिरा' जली आधार। नरगिस का पुष्प।

6. **नुन्दबोन**

नन्दनवन आधार।

7. **काठकर**

मध्य एशिया से संबंध—काष्ठगृह आधार। पुराने जमाने में कश्मीर में नीचे से ऊपर तक लकड़ी के (फलों) लट्ठों को जोड़कर घर बनाये जाते थे। इसी पर काशगर बना है।

8. **खुरासन्न**

खोरव सा'त्य सन्ने मुच'। खुरों से दबी जमीन। खुरासान मध्य एशिया के एक नगर का नाम।

9. **दुमट्टस न री जय गच्छ' न्य**

वज्रदृढ़ता। मठ ध्वंस के युग की स्मृति। कठोरहृदयता।

10. **बेगरगुन्ड तथा कुल्य फकीर**

घुमक्कड लोगों के कश्मीर प्रवेश के साथ संबंध।

11. **हम चीनी नम दगय**

तैमूर आदि के जुलम की याद । अत्याचार, अभिमान ।

12. **पीरूँ पार । बौंजि लद्दुन**

दंड देना, देश-निकाला देना । पठान एवं सिखयुग ।

13. **बुथ शिगुन**

मूर्तिभंजक । क्रोधीस्वभाव व्यक्ति के व्यवहार के लक्ष्यकर कहा जाता है। मुगल युग की बात ।

14. **नुदरथुय माजि जामुन**

हिन्नू न जरेथ से संबंध ।

15. **लुंगुन**

लेज्य, वाजवान, पाच +पण । भोजन विषयक शब्द समूह ।

शैवदर्शन

16. **अकुस बोकुस तिलवान चकुस**
अनुम बतख लोदम देग्य
श्याल किच-किच वाँगनो
ब्रेमिजि हारस पोन्य छकुम
ब्रेमिजि बेन्ये टयेकिस टयेरवाह

एक ही सत्ता इधर-उधर भी :—एकतत्व
तुझ में मुझ में उसमें भी :—व्यापकता
आत्महंस ही घट-घटवासी :—तादात्म्य
अंग कहो या अंगी भी:—नामरूपता
घर का पानी नदी में फेंका :—लय
तत्त्व तत्त्व में समा गया ।।
मेरा जन्म उदय उसी का उदय
ज्योतित फिर वह ज्योत हुई ।।

17. मुड़न हांजअ माजि नय प्रसन त्रुवयन हन्दि गरह् किथ-क'न्य खन

त्रिकवेत्ताओं की निपुणता।

18. 'ज्येन नय मन्दयेक च्येन क्याजिछुक मन्दछान'

पुन जन्म की व्याख्या।

17. "गुरन वुन नम कुनुय वचुन
नबन दुपनन अन्दर अचुन।।"

सारतत्त्व का चिन्तन और अन्वेषण।

20. "ख्येन-ख्येनय कुन नो वातख"

सन्तोष के द्वारा आनन्द।

इसी प्रकार हमारे पूर्वजों द्वारा लिखित-अलिखित साहित्य हमारी भाषा का जीवन धन है।

फारसी अरबी प्रभाव

नज़र, नज़राना, नार, अनार बदन, गुलबदन, सुन्नत, खुतब, लिबास, इन्सान जैसे अनेक शब्द इस भाषा में सुशोभित हैं।

"मुगुल डीशिथ गच्छि फारसी नमुन नोलुन"।

21. "यगर कारखाने ब्रोन्ठकुन"

पकान गव

स्वातन्त्रता संघर्ष का नाम।

22. नन्ना जी

कश्मीरी नाम।
कुशान युग की याद।

23. चार हाल

पाठशाला।
बंगला प्रभाव।

24. **बोटा कनेरू फे ।**

बोट—मोर से संबंध ।

नवीन युग

अरिनिमाल और हब्बा खातून के विप्रलंब श्रृंगार के भूषण मर्मभेदी काव्य को तो इस भाषा की अन्तर्व्यथा नाम देना समीचीन ही भाता है।

नवीन युग के रूमानी कवि रसुलमीर, स्वातन्त्र्य प्रेमी आजाद, प्रकृतिप्रेमी महजूर से प्रेरणा लेने वाले स्वतान्त्र्य युग के अनेकोनेक कवियों, कहानीकारों, नाटककारों, कलाकारों, पत्रकारों, उपदेशको, सूफियों, सिद्धों मूर्तिकारों का समावेश भी इसमें स्वतः होता ही है ।

इसमें आकाशवाणी के कार्यक्रमों और कश्मीर विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग के एतत्-संबंधी शोध प्रयासों को भूला नहीं जा सकता।

इसमें सिखों, नवकश्मीरियों, स्थाई और अस्थायी कश्मीरियों के उच्चारण का भी समावेश है जो इसके विकास क्रम में सहायक है, इसमें डोगरी भाषी वे जन भी सम्मिलित हैं जो प्रदेश की प्रमुख भाषा के नाते इसमें लघु वाक्यों का प्रयोग कश्मीर भाषियों से विनोद और आश्चर्य से करते हैं । भारत से अन्दर और बाहर रहने वाले कश्मीरी भी इसमें शरण ले सकते हैं।

काश ! हम इसके लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग भी शुरू करते । इसका प्रभाव क्षेत्र असीम हो जाता । यह अमृतवाणी बन जाती । इसके पठन-पाठन का प्रारंभ महाराजा हरिसिंह जी के शासनकाल से प्रारंभ हुआ था किन्तु अभी तक गति धीमी ही है।

इन बातों से स्पष्ट है कि कश्मीरी एक पूर्ण स्वतंत्र एवं सर्वांग, सुन्दर भाषा है। इसको पिछलग्गू भाषा कहना या इसे द्वितीय दर्जे की जबान मानना अन्याय है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर इसके विषय में विचारने से उलझाव हटकर समाधान सामने हाजिर हो जाता है ।

कश्मीरी काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर

● डॉ. भूषणलाल कौल

राष्ट्र के तीन महत्त्वपूर्ण घटक माने जाते हैं—भूमि, उस भूमि पर रहने वाले लोग तथा उन लोगों की संस्कृति। इन्हीं तीन तत्त्वों के समुचित संयोग से राष्ट्र गठन होता है।[1] जब हम भूमि की बात करते हैं तो हमारे सामने भौगोलिक सीमाओं में बन्धा हुआ किसी भी देश का विशिष्ट भू-खण्ड साकार हो उठता है। तत्पश्चात उस विशेष भू-खण्ड पर रहने वाले लोगों का शताब्दियों पुराना इतिहास हमें अपनी ओर आकर्षित करता है और फिर जनसमुदाय का सांस्कृतिक वैभव यानी उनके मानसिक विकास का इतिहास—जिसमें धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान, विचारधाराएं, सिद्धान्त सब कुछ आ जाते हैं—हमारे आकर्षण का केन्द्र बन जाता है।

भारत एक विकासोन्मुख राष्ट्र है जहां अनेक धर्मों, जातियों एवं वर्गों से संबंधित

---

1. "भूमि, भूमि-वासी 'जन' और जन-संस्कृति, तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात भौगोलिक एकता, जन अर्थात जनगण की राजनैतिक एकता, और जन-संस्कृति अर्थात सांस्कृतिक एकता—तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है।"

'हिन्दी कविता में युगान्तर'—डा. सुधीन्द्र—आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, पृष्ठ—164, दूसरा संस्करण—1957 ई.

करोड़ों जन एक साथ रहते हैं। विदेशों से भी कई जातियां यहां आकर बस गई हैं यहां तक कि आर्यों के मूल निवास-स्थान के बारे में भी इतिहासज्ञों में मतभेद है। जब तक यहां भिन्न-भिन्न जातियां मिलकर अथवा संगठित होकर एक साथ नहीं रहतीं तब तक भारत एक अखण्ड राष्ट्र के रूप में अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। अतः राष्ट्रीय एकता वास्तव में इस कौम की प्राणशक्ति है और इसे सींचने में तथा शक्तिशाली बनाने में कश्मीरी भाषा के साहित्यकारों का भी प्रशंसनीय योगदान रहा है। यहां इस तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि कश्मीरी लोक सहित्य में व्यंग्य-प्रधान लोकगीतों की एक स्वस्थ परम्परा मिलती है जिन्हें हम 'लड़ीशाह' कहते हैं। इनमें राजकर्मचारियों के अत्याचार, अकाल, देशवासियों की आर्थिक दुर्दशा एवं अन्यायपूर्ण शासन-व्यवस्था का व्यंग्यात्मक चित्रण मिलता है। इन रचनाओं में जन-मानस को जाग्रत करने की अद्भुत शक्ति निहित है। अप्रत्यक्ष रूप से ये लोकगीत भी राष्ट्र को संगठित और शक्तिशाली बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 14वीं शताब्दी ई. में लल्लेश्वरी ने हिन्दू और मुसलमानों को आपसी भेदभाव भुला कर वास्तविक तथ्य एवं विराट् सत्य को पहचानने और मनसा अनुभव करने के लिये प्रेरित किया था। महान् रहस्यवादी कवयित्री होते हुए भी लल्लेश्वरी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत थी। धर्म, जात और सम्प्रदाय के नाम पर जो दीवारें खड़ी कर दी गयी थीं उन्हें तोड़ कर ललद्यद मानवता का महानतम सन्देश अपने देशवासियों का सुनाती रही। धर्म बन्धन नहीं शक्ति है, रूढ़ि नहीं गति है, अज्ञान का तमसान्धकार नहीं ज्ञान का प्रकाश है—यहां हिन्दू और मुसलमान एक हैं। हमें अपनी असलियत को जानना होगा तभी हमारा जन्म सार्थक होगा। लल्लेश्वरी हमारी सांस्कृतिक विरासत का जाज्वल्यमान शक्ति-स्तम्भ है जो आज भी हमारी राष्ट्रीयता की भावना को प्राणदायिनी शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है।

—'शिव छुई थलि-थलि रोजान—मो जन ह्यु न्द—तं मुसलमान…

—'शिव अणु-अणु में व्याप्त है, हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव भुला दे। यदि बुद्धिमान हो तो अपनी जात को पहचान, वही साहब की सही पहचान है।'[1]

---

1. 'ललद्यद'—सम्पादक-प्रो.जे.एल. कौल—जम्मू एण्ड कश्मीर एकेडमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण, सन् 1984 ई, पृ.124

सुलतान जैनुलाबद्दीन 'बड़शाह' (1420 ई. 1470 ई.) का शासनकाल कश्मीर के इतिहास में पर्याप्त चर्चित रहा है। सोम पण्डित नाम का प्रतिभावान लेखक इन्हीं के दरबार में था जिन्होंने 'जैनचरित' नामक चरित काव्य लिख कर राष्ट्रीयता की भावना को परिपुष्ट करने की दिशा में बड़शाह के योगदान की खुलकर प्रशंसा की है। सोम पण्डित के लिए राष्ट्र उस समय एक सीमित अर्थ में ही मान्य था।

कश्मीरी रामायणों में भी वीर रस की प्रधानता है और देश की सामूहिक कल्याण भावना से प्रेरित होकर इन कवियों ने राम की विजय को सांकेतिक रूप में पाप पर पुण्य की विजय अथवा आततायी पर सत्यवादी की विजय के रूप चित्रित किया है। प्रकाश भट्ट का 'रामावतारचरित' आनन्द राम राजदान का 'आनन्द-रामावतार चरित', पं. विष्णु कौल का 'विष्णुप्रताप रामायण' एवं पं. नीलकंठ शर्मा का 'रामायणि शर्मा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

20वीं शताब्दी के कश्मीरी साहित्य में राष्ट्रीयता की धारणा (concept) को व्यापक वैचारिक आधारभूमि प्रदान हुई। इस शताब्दी में ही पहली बार यहां के देशवासियों ने पिंजर-बद्ध रहने से साफ इनकार किया, परिणामस्वरूप दासता की लौह श्रृंखलाएं झनझना उठीं और शासन सत्ता का स्वर्ण-आसन डगमगाने लगा। सम्पूर्ण देश में ब्रिटिश सरकार के आतंक के विरुद्ध विद्रोह की लहर भड़क उठी थी और कश्मीर में ब्रिटिश सरकार के एजेंट महाराजा बहादुर के विरुद्ध आन्दोलन दिन-ब-दिन जोर पकड़ रहा था। सवाल था—सम्पूर्ण राष्ट्र की मुक्ति का, दासत्व की श्रृंखलाओं को तोड़ने का, अपने खोये हुए अधिकारों की पुनः प्राप्ति का। इस जागृति-आन्दोलन में पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली का भी अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गुलाम देश की जहन में एक नवीन क्रान्ति आई और इस प्रकार राष्ट्र की श्मशानी शान्ति भंग हुई। 20वीं शताब्दी के द्वितीय और तृतीय दशक में राजनीतिक आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। इन्हीं दिनों कविवर गुलाम अहमद 'महजूर' कश्मीरी भाषा में प्रेम-रस छलकाती गजलें लिखते थे लेकिन जिन्दगी के भी बीभत्स यथार्थ ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। प्रेम के माधुर्य में जिन्दगी का विष घुल गया और एक नये काव्यान्दोलन की शुरुआत हुई। 'महजूर' देशवासियों के लिये एक नवीन प्रेरणा स्रोत बन कर आये—नवीन युग के संदेशवाहक। कुछ ही समय के बाद 'महजूर' की

राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आजाद' ने इसे (राष्ट्रीयता की भावना को) वैचारिक गरिमा प्रदान की और परवर्ती युग में सर्वश्री गुलाम हसन बेग 'आरिफ', दीनानाथ कौल 'नादिम', अमीन कामिल, रहमान राही, नूर मुहम्मद रोशन जैसे जागरूक कवियों ने राष्ट्रीय विचार-धारा को चिन्तन की शान पर चढ़ा कर एक स्वस्थ काव्य-प्रवृत्ति के रूप में विकसित होने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया। विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से प्रभावित होकर युवाकवियों ने राष्ट्र प्रेम की तपन को महसूस करते हुए तथा राष्ट्र के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए रच-नाएं लिखीं। कवि अपने निजी व्यक्तित्व की टूटन, पराजय, निराशा, बिखराव एवं अस्तित्व संकट के एहसास से तथा वैयक्तिक व्यथा-वेदना की सीमाओं से बाहर निकल कर सामूहिक जनमानस की पीड़ा को मुखर करने का प्रयास करने लगा। इन रचनाओं में वायवी व्यक्ति नहीं अपितु ठोस धरती पर जिन्दा रहने के लिए संघर्ष करता हुआ समूह बोल रहा है। इन कवियों में सर्वश्री फाजिल कश्मीरी, मोतीलाल साकी, रोसुल पोंपुर, मोहनलाल 'आश', ओम-कारनाथ 'शबनम', शाहिद बड़गामी, मशल सुलतानपुरी एवं गुलाम अहमद 'गाश' उल्लेखनीय हैं। 'महजूर' को अपने देशवासियों से अथाह प्रेम था। वे उनके दुख में दुखी और सुख में सुखी थे। निरन्तर वे अपने देशवासियों को संगठित होकर संघर्ष-पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते रहे। प्राचीन काल से ही कश्मीर हिन्दू-मुस्लिम एकता का उज्ज्वल प्रतीक रहा है। गांधी जी को यहीं पर रोशनी की एक किरण दिखाई दी थी। 'महजूर' प्रत्येक देश-वासी के हृदय में मानवता की ज्योत प्रज्वलित करते हुए कहते हैं—

सानि वतनुकि कुस छु दुश्मन कुस छु दोस्त जहल त्रा'विथ गंजरा'विव पानिवा'न्य...'हमारे देश का कौन मित्र है और शत्रु ? निष्फल वाद विवाद को छोड़ कर इस तथ्य को समझने का प्रयास करो। यदि मुसलममान दध है तो हिन्दू शक्कर। इस दूध और शक्कर को परस्पर एक कर दो। हिन्दू (दिशा निमंत्रण के हेतु) पतवार संभाल लेंगे तो मुसलमान (नैया को खेने के लिए) चप्पू चलायेंगे। मिलकर अपने झगड़े निपटा लो।'[1]

---

1. 'प्याम-ए-महजूर' न. 2—प्रकाशक—अली मुहम्मद, पुस्तक-विक्रेता, हब्बाकदल, श्रीनगर, मार्च 1944 ई.—नज्म न. 6, पृ.—2

धार्मिक संकीर्णताओं के विरुद्ध वे निरन्तर लड़ते रहे। उन्हें पूर्ण विश्वसा था कि धर्म के ठेकेदार मजहब के नाम पर इनसानियत का खून कर रहे हैं। देशवासियों के प्रति उनका यह कथन आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता को पूरा करता है:—'बा'यिसुन्द बा'यिस शूब्या थावुन मलाल गण्ड दिलन हिन्द मुचिरा'विव पानिवा'न्य'—"क्या यह शोभनीय है कि एक भाई अपने हृदय में दूसरे भाई के लिए वैर-भाव रखे ! अपने हृदय की सब गांठें खोल दो और परस्पर प्रेम और सद्भावनापूर्ण व्यवहार करते रहो। अपने अनजान देश वासियों को सुपथ पर चलना सिखाओ। आपस में एक दूसरे का हौसला बढ़ाओ।"[1]

'महजूर' ने अपने राष्ट्रीय काव्य में देशवासियों को परस्पर संगठित रह कर विकट परस्थितियों से जूझने के लिए प्रेरित किया है। यहां एक देश-हितैषी के रूप में वे अपने सामाजिक दायित्व को निभाने हेतु रचनात्मक धरातल पर सक्रिय दिखाई देते हैं। युगानुकूल यही उनका धर्म था और यही उनके काव्य की मर्यादा—

न्याय वतनिक अंजिरा'विव पानिवा'न्य अख अकिस प्यठ युथ न जांह काँछिव बदी—'एक होकर अपने देश की समस्याओं को सुलझाने में जुट जाओ। परस्पर एक दूसरे का अहित कभी न चाहना, इस प्रकार आपस में ही शत्रुता मोल नहीं लेना। यदि तुम संगठित रहोगे तो कोई तुम्हें परास्त नहीं कर सकता। स्वयं एक दूसरे के शत्रु बन कर गृहयुद्धों को मत बढ़ाओ। आपस में कभी भी कोई फितना खड़ा न करना।'[2]

स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आजाद' युगीन जीवन से बेहद प्रभावित हुए थे, उन्हें जीवन जीने में अटूट विश्वास है। नरक-स्वरूप परतंत्र देश में पल रहे असहाय जन-समूह की दीन-हीन दशा को देखकर वे व्यथा-वेदना से विह्वल हो उठे थे। विशुद्ध मानवीय गुणों से सम्पन्न मनुष्य के कर्म क्षेत्र में ही उन्हें सौन्दर्य की झलक देखने को मिलती है। यही मानव धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, कुल, रंगभेद

---

1. प्याम-ए-महजूर'—न. 2—नज्म न.-6, पृ. 4
2. 'प्याम-ए-महजूर'—न. 2—नज्म न.-6, पृ. 3

आदि कारणों से टुकड़ों में बट जाता है। मानव के इस टुकड़ों में बटे हुए व्यक्तित्व को देखकर कवि क्रुद्ध हो उठता है। मानवतावादी जीवन-दृष्टि को वाणी प्रदान करते हुए कवि वस्तुत: प्रत्येक देशवासी को इनसानियत का पाठ पढ़ा रहे हैं। इनसानियत का यह जज्बा राष्ट्रीय एकता के लिए नितान्त आवश्यक है। परस्पर प्रेम, सौहार्द एवं समता की भावना से ही राष्ट्र के सुखद जीवन का स्वप्न साकार हो उठता है और यही कारण है कि राष्ट्र के विश्रृंखलित जन-जीवन को देख कर तथा उससे पीड़ित होकर कवि अपने भीतरी आक्रोश को बाह्यभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखता है:—

च ओसुख गाटिजारुक नूर लोगुथ नार इन्सानो······'तुम तो बुद्धिमता की प्रज्वलित ज्योति थे और बन गये दाहक अग्नि की लपट। निर्दयी मनुष्य, तुम ने मानवता को बदनाम कर दिया। ईश्वर ने तुझे प्रेमपूर्ण व्यवहार करने के लिए पैदा किया था और तुमने दीन व ईमान का व्यापार करना शुरू किया।"[1]

अभावग्रस्त जीवन के संकटमय क्षणों की कटु अनुभूतियों ने पण्डित दीना-नाथ कौल 'नादिम' को जहां अपने आपके प्रति सचेत किया वहां साथ ही साथ वे राष्ट्रीय स्तर पर भी जन-सामान्य की दीन-हीन स्थिति से अवगत होकर विचलित हो उठे। उन के मानस में देश-प्रेम की ज्वाला भड़क उठी। उत्कट देश प्रेम की भावना को अपनी रचनाओं का मूलाधार बनाकर 'नादिम' सृजन की प्रक्रिया में प्रवृत्त हुए। मातृ-भूमि के प्रति अनन्य अनुराग, अभावग्रस्त जीवन के परिणामस्वरूप देशवासियों की शोचनीय दशा, दारिद्र्य और भुखमरी तथा जन-आक्रोश से उत्पन्न विद्रोह को कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। 'नादिम' की काव्य-यात्रा का यह पहला पड़ाव है। इस युग में उन्होंने 'कशीरि हुन्द दावा' शीर्षक से एक उल्लेखनीय रचना लिखी है जिस में राष्ट्रीय एकता का स्वर पूरे वेग के साथ मुखर हो उठा है:—

'मिलिचारि सूत्य दुनिया म्य छुम यकसान बनावुन म्य छु ह्यु न्द त मुसल-

---

1. 'कुलयाति आजाद'—सम्पादक: डॉ० पद्मनाथ गंजू, जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी, प्रकाशन-सन् 1967 ई.—'आसमानिक तारक वनान इनसानस'—'आजाद'—पृ. 374

मान बयि इंसान बनावुन—'परस्पर बन्धुत्व की भावना से मुझे दुनिया में समता स्थापित करनी है। मुझे हिन्दू और मुसलमान को इनसान बनाना है। सिक्ख के साथ हिन्दू का मेल होगा और हिन्दू के साथ मुसलमान का मेल होगा। किसने इन्हें परस्पर एक दूसरे से भिन्न कहा ? ये सब एक ही मां की सन्तान हैं। बैर के कांटे हटा कर मुझे गुलिस्तां बनाना है। मुझे हिन्दू और मुसलमान को इनसान बनाना है।[1]

राष्ट्रीय एकता की भावना से प्रेरित होकर अन्य समकालीन कवियों ने भी प्रभावशाली रचनाएं लिखी हैं। पिछले तीन दशकों में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो घटनाएं घटित हुई हैं तथा भारत पर जो विपत्ति के बादल उमड़ आये उनके घटाटोप ने भी युवा कवि को अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत किया, फलत: राष्ट्रीय-एकता का प्रश्न समय की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में उभर कर सामने आया। भारत पर चीनी आक्रमण, दो बार पाकिस्तान द्वारा हिन्दुस्तान की धरती को कुचलने का दुःसाहस, देश में हो रहे साम्प्रदायिक दंगे, आतंकवादियों द्वारा देश की एकता को निःशक्त बनाने की कुटिल योजना, साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा हिन्दुस्तान को तोड़ने की साजिशों और विश्व में व्याप्त शीतयुद्ध की स्थिति ने कश्मीर के सर्जनात्मक कलाकार को भी विशेष रूप से प्रभावित किया है। विशिष्ट विचारधाराओं और काव्यान्दोलनों से प्रभावित होते हुए भी वह इस भीषण वस्तुस्थिति से अप्रभावित नहीं रह सका। आज राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता को शिद्दत के साथ महसूस किया जा रहा है। यही कारण है कि कवि-मानस इस प्रश्न के उत्तर को तलाशने के हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार से सक्रिय दिखाई देता है। इस दृष्टि से फाज़िल कश्मीरी द्वारा लिखित 'मीरास', टाक जैन गीरी द्वारा लिखित 'आ'स छि का'शिर बा'य बा'य', मोतीलाल साकी रचना की 'हिमालिक गबर रा'छदर बेशुमार', गुलाम अहमद 'गाश' की रचना 'वतन', रसूल पोंपुर की कविता 'अमुन, जंग त अमुन', गुलाम नबी नाजिर की कविता 'वतनिक छि वतनदार बा'य बा'य आ'सी यार यार', शाहिद बड़गामी की रचना 'लोलस मिलिचारस रा'छ करव', मोहनलाल आश द्वारा लिखित 'यथ म्यचि छु ता'सीर स्यठाह', तथा मशल सुलतानपुरी की रचना 'एलान' उल्लेखनीय हैं।

---

1. 'शिहिल कुल'—दीनानाथ 'नादिम'—सन् 1985 ई० 'कशीरि हुन्द दावा', पृ. 50

फाजिल कश्मीरी को गंगा और वितस्ता की बहती हुई जल-धारा में भारत के सांस्कृतिक वैभव का इतिहास प्रतिबिम्बित दिखाई देता है। उन्हें गंगा और वितस्ता से समान अनुराग है, दोनों के साथ भारत के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इतिहास की असंख्य घटनाएं जुड़ी हुई हैं और दोनों नदियां हैं—हमारी साझी मीरास। इनका पावन जल हमारे लिए अमृत तुल्य है और यही हमारे राष्ट्र को इन्द्र के नन्दनबन का गौरव प्रदान करती हैं:—यि गंगा यि व्यथ सानि देशिक जिदरयाव‥‥'यह गंगा और वितस्ता हमारे देश के दो दरिया हैं जिन के तटों पर शहर, कस्बे और सहरा बसे हुए हैं। गंगा पवित्र है और वितस्ता पाकीजा। दोनों प्राचीन युग के प्रभाव को लेकर प्रवाहमान हैं। यह वितस्ता कश्मीरियों को संस्कृति को दर्शाती है। इसके तट पर शाह हमदाद की खानकाह है और पास में काली का मन्दिर। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही पराशक्ति के याचक हैं।'[1]

अतः यह कहना उचित होगा कि कश्मीरी साहित्य में विशेषकर कश्मीरी काव्य में राष्ट्रीय एकता का स्वर पूरे वेग के साथ मुखर हो उठा है। राष्ट्रीय आन्दोलन में यहां के सर्जनात्मक कलाकार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसके सम्मुख सवाल व्यक्ति, जाति, वर्ग या सम्प्रदाय-विशेष का नहीं था अपितु पूरे राष्ट्र के अस्तित्व का सवाल उसे नये अन्दाज में सोचने के लिए विवश कर रहा था। सम्पूर्ण राष्ट्र के सामूहिक कल्याण के हेतु वह निरन्तर साधना-रत रहा और आज भी सर्जनात्मक कलाकार से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने परिवेश के प्रति न केवल ईमानदार रहे अपितु इनसान के भीतर पल रही दानवी प्रवृत्तियों पर भी कुठाराघात करे। आज फूलों के माधुर्य से कहीं अधिक तलख हकीकतों के जहर को पीकर विषपायी बनने की आवश्यकता है क्योंकि सवाल व्यक्ति का नहीं, पूरे राष्ट्र का है।

---

1. 'स्वर्ग म्योनुई वतन'—सम्पादक: मुहम्मद अहमद अन्दराबी, जम्मू-कश्मरी कल्चरल अकादमी प्रकाशन—'मीरास'—फाजिल कश्मीरी—पृ.-12-13

कश्मीर में शंकराचार्य

● डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित

कश्मीर मण्डल में यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य पहले-पहले परब्रह्म की स्वभावभूता परमेश्वरी शक्ति की वास्तविक सत्ता को नहीं मानते थे। फिर जब वे कश्मीर आए तो यहां आचार्य अभिनवगुप्त के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। उसके फलस्वरूप उन्होंने पारमेश्वरी शक्ति की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार करते हुए सौन्दर्यलहरी स्तोत्र का निर्माण किया। पठानों के शासन काल में कश्मीर में एक प्रसिद्ध शैवाचार्य विद्यमान थे। उनका नाम था शिवोपाध्याय। उन्होंने भी अपने "श्रीविद्यानिर्णय" में इस दन्तकथा का समर्थन किया है। उससे यह प्रतीत होता है कि ऐसी दन्तकथा प्राचीन काल से प्रचलित रही है। परन्तु इस दन्तकथा की असत्यता निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध होती है—

1. शंकराचार्य का समय आठवीं-नौवीं शताब्दी के आस-पास का है जबकि आ० अभिनवगुप्त दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों के मध्य में मानव शरीर में विद्यमान थे। अतः उनका परस्पर संवाद एक कपोल-कल्पना मात्र है।

2. शंकराचार्य के गुरु के गुरु आचार्य गौड़पाद निश्चय से शक्ति के उपासक तथा तांत्रिक साधना के अभ्यासी थे। यह बात उनके श्रीविद्यारत्नसूत्र से और सुभगोदय स्तुति से स्पष्ट हो जाती है। शंकराचार्य के द्वारा निर्मित प्रपञ्चसार नाम का एक तन्त्र ग्रन्थ भी मिल रहा है जिस पर उनके शिष्य पद्मपाद की टीका है। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि शंकराचार्य स्वयं अपनी निजी गुरु-परम्परा से ही तान्त्रिक ढंग की शक्ति-उपासना के अभ्यासी थे। अतः उनके द्वारा कश्मीर आकर ही शक्ति-उपासना का सीखना भी एक कपोल कल्पना ही है।

कश्मीर में वृद्ध जनों से आचार्य शंकर और उस नाम के मन्दिर के भी परस्पर सम्बन्ध की कहानियां सुनी जाती थीं। परन्तु इस बात का साक्षी इतिहास है कि शंकराचार्य-पर्वत का प्राचीन नाम गोपाद्रि है और उसके शिखर पर विद्यमान प्राचीन मन्दिर का ऐतिहासिक नाम ज्येष्ठरुद्र है। महाकवि कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार गोपाद्रि के शिखर पर कश्मीर नरेश गोपादित्य ने ज्येष्ठरुद्र नाम के मन्दिर का निर्माण किया था। मुहम्मद शाह के शासन काल में सन् 1484 ई. में वर्तमान शंकराचार्य-पर्वत के दामन में कश्मीरी जनसेना और सैयदों की सेना के बीच एक घोर युद्ध हुआ जिसमें एक मुसलमान नवाब शहीद हो गया। उसकी कब्र पर फारसी और संस्कृत में एक शिलालेख विद्यमान है। छान्दस संस्कृत लेख के अनुसार वह ज्येष्ठरुद्र के दामन में (ज्येष्ठ-लोद्र-मूले) और फारसी लेख के अनुसार तख्ते-सुलेमान के पास (बर तख्तगाहे सुलेमान) वह नवाब मारा गया था। इस शिलालेख से यह सिद्ध होता है कि सन् 1484 ई. में इस मन्दिर के दो नाम प्रसिद्ध थे। इसे हिन्दू लोग ज्येष्ठरुद्र कहते थे और मुसलमान कहते थे तख्ते-सुलेमान। इसे शंकराचार्य कोई नहीं कहता था। यह नाम इस मन्दिर को तब मिला जब डोगरा शासन के प्रारम्भिक काल में रिक्त पड़े हुए इस मन्दिर में वर्तमान शिवलिंग की स्थापना की गई। हो सकता है कि शांकरमठों में से किसी मठाधीश की अध्यक्षता में इसकी प्रतिष्ठा हुई हो और उसी ने इसे यह नाम दिया हो। इस तरह से इस मन्दिर का सम्बन्ध जो आदिशंकराचार्य के साथ जोड़ा जाता है, वह भी एक कपोल कल्पना ही है।

चौदहवीं शताब्दी में विजयनगर में माधवाचार्य ने शांकरदिग्विजय नामक एक विशाल ग्रन्थ का निर्माण अति सुन्दर काव्य शैली में किया। उस ग्रन्थ में शंकराचार्य की कश्मीर यात्रा का और शारदामन्दिर में विद्वानों के साथ उसके शास्त्रार्थ का लम्बा-चौड़ा वर्णन मिलता है। आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर उस ग्रन्थ के विषय में निम्न बातें निर्विवादतया कही जा सकती है—

1. शांकरदिग्विजय एक काव्य है, इतिहास नहीं है।

2. इनमें वर्णित घटनाओं का एक आधार तो भक्तों के द्वारा कल्पित दन्त-कथाएं हैं और दूसरा आधार माधवाचार्य की अपनी कवितामयी कल्पनाएं।

3. इसमें भिन्न-भिन्न शताब्दियों में विद्यमान कुमारिलभट्ट, मण्डन मिश्र और शंकराचार्य जैसे आचार्यों को एक ही युग में ठहराया गया है।

4. अमरुक जैसे गीतिकाव्य के कवि का एकीकरण शंकराचार्य से किया गया है।

5. अभिनवगुप्त को कश्मीर के बदले असम देश में ठहराते हुए उसे शैवाचार्य होने के स्थान पर ब्रह्मसूत्र का शाक्त भाष्यकार बताया गया है, साथ यह भी कहा गया है कि वह एक जादूगर था। जिसने शंकराचार्य पर अभिचार किया था।

शंकराचार्य की शिष्य-परम्परा में उनके समय से लगभग एक सौ वर्ष पश्चात अनन्तानन्दगिरि-नाम के एक संन्यासी लेखक ने भी उनकी एक जीवनी लिखी है जिस का काम "शंकरविजय" है। उसमें अधिकांश ऐतिहासिक सत्य घटनाओं का ही वर्णन किया गया है और इस कारण से वह ग्रन्थ काफी विश्वसनीय है। परन्तु माधवाचार्य का शंकरदिग्विजय एक अति सुन्दर काव्य है जो शंकराचार्य के भक्तों के मनोभाव के अनुकूल रचा गया है; अतः वही भारत भर में प्रसिद्ध हो गया है जबकि सच्चे इतिहास को बताने वाले प्राचीन ग्रन्थ को कोई-कोई विरला-विरला ही विद्वान् जानता है। फिर आश्चर्य की बात यह है कि माधवाचार्य के कवि-कल्पनामयी वर्णनों को बड़े-बड़े विद्वान भी सच्ची ऐतिहासिक घटनाएं मान रहे हैं जबकि उन में ऐतिहासिक तत्त्व दस प्रतिशत से अधिक नहीं है।

इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि माधवाचार्य पाठकों को ऐतिहासिक सत्य के बदले अत्युक्तियों से खूब भरी हुई कवि-कल्पनाएं दे रहे हैं अतः उनका ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से प्रमाण नहीं।

बहुत सम्भव है कि शंकराचार्य ने अवश्य ही कश्मीर यात्रा की होगी, क्योंकि सारे भारत की यात्राएं करते हुए वे कश्मीर को कैसे भूल जाते। परन्तु यह भी एक सत्य बात है कि कश्मीर की हिन्दू संस्कृति के भीतर शंकराचार्य की शिक्षा का कोई स्फुट प्रभाव कहीं देखने में नहीं आया।

इस विषय में निम्नलिखित बातें विचारनीय हैं—

1. यदि शंकराचार्य का अद्वैत-वेदान्त कश्मीर में जरा भी प्रभाव जमा चुका होता तो बौद्ध विज्ञानवाद की तरह यहां पर्याप्त मात्रा में फूला-फला होता। परन्तु उस अद्वैत-वेदान्त का जरा भी विकास नहीं हुआ।

2. कश्मीर के प्राचीन वेदान्ती जैसे भगवद् भास्कर, केशव कश्मीरी, आदि में से किसी ने भी शंकराचार्य के विवर्तवाद को जरा भर भी स्वीकार नहीं किया। कश्मीर के सभी प्राचीन वेदान्ती ऐश्वर्यवाद को मानने वाले वैष्णव थे।

3. कश्मीर में कहीं भी कोई भी पुराना संन्यासियों का स्थान है ही नहीं। वहां किसी भी प्राचीन संन्यासी का न तो नाम ही कहीं मिलता है और न स्मृति ही।

4. शंकराचार्य द्वारा लोकप्रियता वे लाई गई संन्यास पद्धति कश्मीर में डोगरा शासन से पहले कहीं भी नहीं चली।

5. महाराजा प्रतापसिंह के शासन काल में यहां एक महादेव आश्रम नाम के संन्यासी आए, ग्राम-ग्राम घूमे और एक दो कश्मीरी ब्राह्मणों को संन्यास की दीक्षा दी। उनकी ही प्रेरणा से कुछ एक नौजवान आबालब्रह्मचारी बने रहे वे और शांकरवेदान्त का अध्ययन करते रहे। उससे पहले यहां उसका पठन-पाठन प्रचलित ही नहीं था।

6. महाराजा प्रतापसिंह के ही शासन काल में लाहौर निवासी कश्मीरी पण्डित डॉ. बालकृष्ण कौल के प्रोत्साहन से श्रीनगर के एक पण्डित सोनाकाक राजदान बनारस गए और वहां से शांकरवेदान्त को पढ़कर आए। उन्होंने श्रीनगर और अनन्तनाग के कुछ एक महानुभावों को शांकरवेदान्त पढ़ाया। उनमें से उमानगरी के शंकरपण्डित ने इस विद्या में काफी अधिकार को पाया। उन्हीं के शिष्य गौतमनाग, वेरीनाग, गुसाईं गुंड, वारामुला आदि स्थानों में आश्रमों के अधिपति बनकर शांकरवेदान्त का प्रचार करते रहे। अब वह परम्परा भी लुप्त हो गई है।

7. उक्त महाराजा ही के समय में दो और संन्यासी महात्मा कश्मीर आए जिन्होंने शांकरवेदान्त का प्रचार इस प्रान्त में किया। वे थे (1) बाबा जगर्नाथ और (2) स्वामी गंगाराम। स्वामी गंगाराम जी के परिचित लोग अभी भी कहीं-कहीं मिलते हैं।

इस तरह से डोगरा शासन काल से पहले कश्मीर में शांकरवेदान्त का

नाम भी कहीं मिलता नहीं था। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आद्य शंकराचार्य इस प्रान्त में अपना प्रभाव जरा भी नहीं जमा पाए।

श्री शिवोपाध्याय ने जिस दन्तकथा को सत्य मान कर उसका उल्लेख किया है उससे यह बात सिद्ध होती है कि पठानों के शासन काल से (अर्थात अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग और उन्नीसवीं के आरम्भ से) पहले ही शंकराचार्य के महत्त्व की प्रसिद्धि कश्मीर में स्थिर हो चुकी थी, क्योंकि सुप्रसिद्ध महानुभाव ही के विषय में दन्तकथाओं का प्रचलन हुआ करता है। बहुत सम्भव यह बात है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिन पचास वर्ष पहले यहां से भाग निकले हुए कश्मीरी ब्राह्मणों को वापिस बुला कर बड़शाह ने यहां पुनः बसाया, वे ही श्री शंकराचार्य की प्रसिद्धि को और उनके प्रति श्रद्धा को इस प्रान्त में अपने साथ ले आए। भगवद्गीता का वर्तमान प्रचलित पाठ जो वस्तुतः महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ (Version) से लिया गया है, उसे भी वे पूर्वविस्थापित कश्मीरी ब्राह्मण ही यहां ले आए। उससे पूर्व यहां भगवद्गीता का वही पाठ प्रचलित था जो महाभारत के उत्तरीय पाठ का अनुसरण करता रहा। भगवद् भास्कर, आ. रामकण्ठ और आ. अभिनवगुप्त ने जो भगवद्गीता की टीकाएं लिखी हैं, उनमें गीता का वह उत्तरीय पाठ ही है, दक्षिण का नहीं। शंकराचार्य ने भगवद्गीता पर जो एक विस्तृत टीका लिखी उसी टीका ने उसके उस दक्षिणात्य पाठ को सारे भारत में फैला दिया और सर्वत्र लोकप्रिय बना दिया। इसी कारण से विस्थापित कश्मीरी ब्राह्मणों ने उसे अपनाया और उसे अपने साथ कश्मीर भी ले आए, वह यहां इतना प्रसिद्ध हो गया कि प्राचीन उत्तरीय पाठ को लोग भूल ही गए। ज्योतिष की नवीन गणित पद्धति, जिसे भानुमासी पद्धति कहते हैं, उसे भी वे ही ब्राह्मण अपने साथ लेते आए। प्राचीन पद्धति, जिसे आजकल मलमासी पद्धति कहते हैं, वह केवल उन ब्राह्मण ही के वंशजों में चल रही है जो सिकन्दर बुतशिकन और सूहभट्ट के नृशंस आतंकों के दौर में भी कश्मीर में ही टिके रहे थे। परन्तु प्राचीन गीता पाठ को वे भी भूल गए। आद्य शंकराचार्य ने और उनके अनुयायियों ने पंच देवों की अर्थात् नारायण, शिव, गणेश, सूर्य और देवी की उपासना को धीरे-धीरे भारत भर में फैला दिया, परन्तु कश्मीर में प्राचीनतर पद्धति के अनुसार, षंगदेव उपासना ही चलती रही और अब भी चल ही रही है। उसमें छठा मुख्य देवता कुमार है जिसे उत्तरीय भारत में जनता ने छोड़ ही दिया है। इस तरह से यहां की पूजा पद्धति भी शंकराचार्य की पद्धति से प्राचीनतर है। कश्मीर की अद्वैत शैवदर्शन तो शांकरवेदान्त से सर्वथा भिन्न है। शांकरवेदान्त का मूल दर्शन सिद्धान्त

बौद्धों के विज्ञानवाद और शून्यवाद के अति समीप आता है, जबकि कश्मीर का अद्वैत सिद्धान्त बौद्धवाद उस और वेदान्तवाद को लगभग एक समान मानता हुआ परिपूर्ण परमेश्वर के सिद्धान्त को ठहराता है । फिर दोनों परस्पर इतनी बातों में भिन्न हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कश्मीर के शैवी अद्वैत सिद्धान्त के विकास की परम्परा पर भी शंकराचार्य के विवर्तनिष्ठ अद्वैतवाद का प्रभाव नहीं पड़ा है । इस तरह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कश्मीर में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पहल शंकराचार्य की दर्शन विद्या का कोई प्रचार नहीं था केवल शंकराचार्य की प्रसिद्धि तथा उनके प्रति श्रद्धा ब्राह्मण जनता में थी जिसे उस जनता के पूर्वज पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां लाए थे । आगे डोगरा शासन में आते रहते हुए वेदान्ती संन्यासियों के प्रभाव से उसमें वृद्धि भी होती रही और कुछ एक अच्छे विद्वानों ने शांकरवेदान्त का पर्याप्त अध्ययन भी किया । अब तो यह स्थिति है कि नवीन पीढ़ी में कोई भी किसी भी विषय का अध्ययन करने वाला नहीं मिल रहा है । समस्त शास्त्रों की परम्परा का लोप हो रहा है । आने वाले दशकों में क्या होगा, यह ईश्वर ही जानता है ।

कश्मीर-मण्डल में शक्ति उपासना

● श्री जानकीनाथ कौल 'कमल'

पर्वतराज हिमालय के उत्तर-पश्चिम भाग में कश्मीर देश प्रकृति की सुरम्यस्थली है। यह पूरे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु संसार भर में विशेष प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से यह 'शारदा', 'अमरनाथ', 'क्षीरभवानी' आदि सुप्रसिद्ध देवस्थानों के कारण यात्रा-स्थल रहा है और अब पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण-स्थल बना है।

नीलयत-पुराण के अनुसार यहां पग-पग पर देवस्थली है और यह भी निश्चित है कि जो भी देवी-देवस्थापन सारे भारतवर्ष में विद्यमान हैं वे सब प्रतीकरूप से यहां मौजूद हैं। इस बात की पुष्टि कल्हण पण्डित कृत राजतरंगिणी से भी होती है। शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी, सूर्य, गणपति, भैरव, भवानी आदि देवी-देवताओं की संयुक्त उपासनाएं प्रचलित होने के साथ-साथ यहां की कश्मीरी पण्डित जनता ने तत्कालीन बौद्ध दर्शन के प्रचार में भी बड़ा योग-दान दिया है। उपनिषद और शांकरवेदान्त के अनुयायी होते हुए यहां के विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को भी समृद्ध किया है।

विशेष रूप से आगमशास्त्र का प्रचार कश्मीर से ही कश्मीर-शैव (त्रिक) दर्शन के रूप में नयापन लिए फैल चुका है। परिणामस्वरूप आठवीं-नौवीं शताब्दी में श्रीवसुगुप्ताचार्य के द्वारा शिव-सूत्रों[1] का प्रचार होने के साथ-साथ

---

1. 'शिव सूत्र' कश्मीर शैव दर्शन का प्रथम ग्रन्थ है। लेखक की इन सूत्रों की हिन्दी में अन्वयार्थ सहित नवीनतम व्याख्या 'शिवसूत्र-विमर्श' के नाम से मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से मुद्रित हुई है। यह साधकों के लाभ की पुस्तक है।

अद्वैत शैव दर्शन का पुनरुत्थान हुआ। यह स्पन्द, प्रत्यभिज्ञा, कुल और क्रम विधाओं में प्रकट होकर त्रिक शासन के नाम से विख्यात हुआ।

कश्मीर में शक्ति उपासना आधार रूप से बहुत प्राचीन काल से विशेष आदर पाती रही। रुद्रयामल तन्त्र में कहा है—

शैव मुखभिहोच्यते

(शक्ति शिवसाक्षात्कार का प्रवेशद्वार है)

श्रुति शक्ति को सक्रिय ब्रह्म कहती है। गायत्री शक्ति की उपासना प्रत्येक द्विज का कर्त्तव्य है। अतः शक्ति ही सब कुछ है। कश्मीर में शक्ति-उपासना भगवती शारदा, भगवती राजराजेश्वरी महाराज्ञी, भगवती, शारिका, भगवती ज्वाला के रूप में की जाती रही है। कहते हैं कि आदि शंकराचार्य को यहां के शारदापीठ (जो अब पाकिस्तान-आजाद कश्मीर—में है) से ही जगद्‌गुरु की महान् उपाधि प्राप्त हुई थी।

भारत में 51 शक्ति महापीठ[1] प्रसिद्ध हैं। इनमें कश्मीर एक है। यहां सती के अंग तथा अंगभूषण—कण्ठ देश की पूजा होती है। शक्ति का नाम महामाया और भैरव त्रिसन्धेश्वर है। आज तक कश्मीर में कई शक्ति-पीठ प्रसिद्ध हैं। कुछ के बारे में लिखते हैं:—

1. राजराजेश्वरी श्री महाराज्ञा भगवती—यह तीर्थ स्थान श्रीनगर से 28 किलोमीटर दूर तूलामुला ग्राम में है। यहां एक षट्‌कोण तथा ओंकार के आकार का अमृत कुण्ड (चश्मा या नाग) है जिसके मध्य में महाराज्ञा का मूर्ति विग्रह संगमरमर के सुन्दर मन्दिर में स्थापित है। इस सुन्दर भूमि-भाग के चारों ओर सिन्धु नदी का नाला बहता है। भक्तजन ग्राम-ग्राम से तथा देश-देश से ज्येष्ठ शुल्क अष्टमी को भगवती महाराज्ञा को भक्ति-

---

1. शक्ति महापीठों का विस्तार से वर्णन तन्त्र चूड़ामणि में मिलता है। इसके अतिरिक्त देवी भागवत तथा देवीगीता में भी महापीठों का वर्णन मिलता है परन्तु वहां संख्या तथा स्थान में भेद है।

भाव के सुमन चढ़ाने आते हैं। स्वामी विवेकानन्द को इस पुण्यतीर्थ में देवी के दर्शन हुए थे। भगवती का ध्यान इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

या द्वादशार्क परिमण्डित मूर्तिरेका
सिंहासन स्थिति मती मुरगैर्वृतां च।
देवीमनक्षगतिमीश्वरतां प्रपन्नां
तां नौमि भर्गवपुषीं परमार्थराज्ञीम्॥

2. चक्रेश्वरी श्री शारिका भगवती—यह हारिपर्वत के मध्य स्थान में विराजमान है। इसे शारिका-शैल भी कहते हैं। कहा जाता है कि भगवती ने सारिका का रूप धारण कर अपनी चोंच से कण-कण डालकर बनाया। सारिका से ही 'शारिका' बन गया। 'ध्यानदेवी ध्यान रत्नमाला' में इस प्रकार वर्णन किया है:—

ॐ बीजैः सप्तभिरुज्ज्वला कृतिरसौ या सप्त सप्तिद्युतिः
सप्तर्षिप्रणतांघ्रि पंकजयुगा या सप्तलोकार्तिहृत्।
कश्मीर प्रवरेशमध्यनगरी प्रद्युम्न पीठे स्थिता
देवी सप्तकसंयुता भगवती श्रीशारिका पातु नः॥

हारिपर्वत के स्थान-स्थान पर देवी-देवताओं के निर्देश हैं। यहां त्रिकोटि देवताओं ता वास है। भक्तजन नित्य प्रति विशेष कर प्रातः इस श्रेष्ठ पर्वत की परिक्रमा करते हैं जो लगभग चार किलोमीटर है।

ऊपर कहे दोनों तीर्थस्थानों में रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत भवानीनामसहस्र स्तवराज तथा धर्माचार्यकृत पंचस्तवी (जिसमें लघुस्तव, चर्चास्तव, घटस्तव, अम्बस्तव और सकलजननीस्तव ये पांच स्तव हैं) का पाठ अनिवार्य रूप से किया जाता है। आदि शंकराचार्य की सौन्दर्य लहरी का प्रचार भी यहां बहुत अधिक रहा है। ये ग्रन्थ षट्चक्र-रहस्य और श्रीचक्र-विश्लेषण में उत्तम माने जाते हैं। परन्तु यहां के साधारण जन में भवानीनामसहस्र शक्ति-उपासना का विशेष माध्यम रहा है। इस स्तवराज का पाठ और जप प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। यह प्राचीन पाण्डुलिपियों से ज्ञात होता है। श्री साहिब कौल शक्ति साधना के विशेष आचार्य हुए हैं। उन्होंने भवानीनामसहस्र पर 'देवीनामविलास'

नाम से विशद वार्त्तिक लिखा है। इनमें भवानी के एक सहस्र नामों के प्रत्येक नाम पर एक-एक श्लोक के द्वारा देवी के रहस्यमय गुणों का वर्णन करने के ब्याज से भगवती की स्तुति की है। इस ग्रन्थ को कश्मीर सरकार के शोध विभाग ने छापा है। कश्मीर की उत्तरकालीन शक्ति-उपासक सन्त परम्परा में कृष्ण जू कार ऋषिपीर, जयलाल (जनान-जोय) आदि मान्य तथा प्रसिद्ध हैं।

3. श्रीज्वाला—इसका विशाल मन्दिर श्रीनगर से 18 किलोमीटर दूर ख्रिव गांव में पर्वत-खण्ड पर स्थित है। यहां आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को बड़ा मेला लगता है। भक्तजन पर्वत-पाद में स्थित जल-कुण्ड में स्नान-तर्पण और अर्चना-ध्यान कर पत्थर-निर्मित सीढ़ियों से ऊपर जाकर ज्वाला भगवती का पूजन करते हैं।

4. कुलवागीश्वरी—श्रीनगर से लगभग 60 किलोमीटर दूर अनन्तनाग के प्रान्त में कुलगाम के स्थान पर देवी का कुण्ड तथा मन्दिर है। जम्मू प्रान्त में वैष्णव देवी कश्मीर के शक्तिपीठों में प्रसिद्ध सिद्ध-पीठ हैं।

कश्मीरी पण्डित जनता की ये अधिष्ठात्री देवियां हैं। विशेष गृहस्थों के साथ विशेष देवियां जुड़ी हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से और शक्ति-स्थापन कश्मीर में विद्यमान हैं। उनका वर्णन समयाभाव तथा स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा सकता। आगे कभी ; ॐ नमो भवान्यै ॥

अरथी

• प्रो० हरिकृष्ण कौल

टार्जन की भाभी उसी वक्त चूल्हा जलाने बैठी थी। फूंकते-फूंकते उसकी सांस फूल गई थी, मगर गीली लकड़ियों और उपलों से लौ ही नहीं निकलती थी। सारी कोठरी धुएं से भर गई थी।

"साला कहां मरा पड़ा है?" डॉक्टर ने उससे पूछा। गीली लकड़ियों ने उसकी आंखों को भी गीला कर दिया था। डॉक्टर को देखकर वह मानों पागल हो गई। जी चाहा कि चूल्हे से अधजली लकड़ी निकालकर इसकी और इसके दोस्त—दोनों की हड्डी-पसली तोड़ डाले। इस कड़ाके की सर्दी में भी सुबह-सवेरे उसके देवर को बहका कर अपने साथ ले जाने के लिए आ गया है। पर साथ ही उसे ख्याल आया कि इसे क्या दोष दे? दोष तो उसकी अपनी मुर्गी का ही है जो दूसरों के घर में अण्डा देती है।

"अभी तक सोया ही है!" डॉक्टर को उसकी चुप्पी में भी जवाब मिला और वह सीढ़ियां चढ़ने लगा। चढ़ते-चढ़ते उसने सुना कि वह कुनकुना रही है। अगर उसे जल्दी न होती तो वह भी उसे खरी-खरी सुनाता।

"उठ, साले! पैंड्रो खतम हो गया।" कमरे में दाखिल होते ही उसने ऐलान किया।

बिस्तर में दुबका टार्जन अचानक उठ बैठा। बात समझ में न आयी। इतना जरूर लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

"मां मर गई साले की !" डॉक्टर उसके सिरहाने बैठ गया।

टार्जन ने बांह जरा फैला दी और खिड़की के पल्ले खोल दिए। वह अभी भी अपने ऊपर रजाई लिये बैठा था। रजाई के ऊपर एक फटा-पुराना कम्बल डाला था और कम्बल के ऊपर उसने अपना ऊनी 'फिरन' फैला दिया था। लाल छींट का तकिया बिना गिलाफ के था और न जाने उसे टार्जन के बालों का तेल चूसते कितने साल हो गए थे। दाहिनी ओर पत्र-पत्रिकाओं से काटी फिल्मी-परियों की रंगीन तसवीरें थीं और बायीं ओर सिगरेट की ड़िबिया ज़िसमें एक अधजली ठंडी और दो साबुत सिगरेटें थीं।

"कब ?" उसने डॉक्टर से पूछा।

"कहते हैं आज तड़के !" डॉक्टर ने टार्जन की डिबिया से सिगरेट निकाली और अपनी कांगड़ी से सुलगाई। "मगर मेरा ख्याल है कि बुढ़िया रात में ही ठंडी हुई होगी और साले को सुबह तक पता ही न चला होगा। साला अपने ही मजे में था।"

"बड़ा कमीना है ! हमारे बगैर ही मजा ले लिया ?"

"मुझे भी कहां मालूम था। सुना पटवारी के घर पर जलसा हुआ था। अगर यह सुनोगे कि वहां कौन-कौन लोग थे तो पांव तले की जमीन खिसक जाएगी।"

"बस, साला डूब गया ! किस बदबख्त ने उसे वहां का रास्ता दिखाया ? वहां तो रात-दिन पत्तों पर पांच-पांच के नोट निछावर होते हैं।···एक सिगरेट मुझे भी देना।"

डॉक्टर ने उसकी डिबिया से ही सिगरेट निकाल कर उसे पेश की।

"कांगड़ी भी देना।"

डाक्टर ने कांगड़ी निकाल कर उसे दे दी। टार्जन ने सिगरेट सुलगा कर कांगड़ी अपनी रजाई के अन्दर रखी—

"अब तो साले की ऐश है। मां का लिहाज था सो उसने अपनी नाव का लंगर उठा लिया। अब बेचे घर और खेले पत्ते। रोकेगा कौन ?"

"देख लेना, घर बेचकर पत्ते ही खेलेगा।"

"हां, तो हमें इस वक्त क्या करना है ?"

"उसकी बहन का कौन खसम यहां है जो बुढ़िया को मरघट ले जाए ? उठो कमर कसो।"

"मैं तो कमर कसे ही बैठा हूं। बोल, किस-किस साले के मां-बाप को कन्धा देना है ?"

टार्जन ने उठकर 'फिरन' पहना। सिर कनटोप में छिपाया। तकिए के नीचे से जुराबों के तीन नये-पुराने जोड़े निकाल कर पहने। कांगड़ी डाक्टर के हवाले करके उससे कहा, "चल, मैं हो गया तैयार !"

"अबे, ठहर, यह सिगरेट तो पहले खत्म करने दे !"

"कर ले। अभी तक बुढ़िया ने जाने की कोई जल्दी नहीं दिखाई तो अब क्या जल्दी हो सकती है ?"

टार्जन ने ताकचे से कांगड़ी उतारी और उसे जोर-जोर से हिलाया, जिससे राख नीचे चली गई और कोयले ऊपर आ गए। उसने डाक्टर से जलता हुआ एक कोयला मांगा और फूंक मार-मार कर अपनी कांगड़ी के कोयले सुलगाने लगा।

"कांगड़ी में नये कोयले नहीं डालोगे ?"

"बाजार में नानबाई से थोड़ी-सी आग मांग लूंगा। कांगड़ी भर कोयलों के लिए सुबह-सुबह ही किसी के ताने क्यों सुनूं ? स्कोर क्या हुआ ?"

"किस साले को पता है।"

"अगर आज दिन में छह विकेट ले सकें, तो शायद जीत जाएं।"

"मैच यह जीत जाएंगे !" डॉक्टर ने उसे अंगूठा दिखाया, "जैसे

बस यही एक मैच जीतना बाकी हो, बाकी सब मोर्चों पर मैदान मार लिया हो।"

दोनों कमरे से बाहर आए। लेकिन डॉक्टर फिर अन्दर चला गया। सिगरेट का अधजला टुकड़ा कान में अटका कर वह फिर बाहर आया।

"छोड़ते क्यों?" उसने टार्जन से कहा।

दोनों आहिस्ता-आहिस्ता सीढ़ियां उतरे। टार्जन की भाभी निचले तले की कोठरी के दरवाजे पर खड़ी थी। जब वे घर से बाहर निकले तब वह अपनी पंजाबी मिश्रित कश्मीरी में फिर कुनमुनाने लगी—"इसका क्या है? जरा-जरा उजाला हुआ नहीं कि यह घरते टुर पड़ी—बाबू बन के, तेल-फुलेल मल के। मन-मन भात टिड़ विच डाले पर सोचता ही नहीं कोई कित्थूँ आवे? जानू मैं, जाने मेरी तकदीर।"

'अबे, यह पंजाबी बटेर तुम्हारे भाई को कहां मिला है? चलते-चलते डॉक्टर ने टार्जन से पूछा।

"चलो, जहां से भी मिला, मिला। हमें ऐसा भी नहीं मिलेगा।"

"तुम्हें नहीं मिलेगा। मेरा तो 'लव' चल रहा है।"

टार्जन ने उसे सिर से पांव तक गौर से देखा और फिर जोर से ठहाका लगाया।

बाजार से टार्जन ने नानबाई से अपनी कांगड़ी तूत के दहकते कोयलों से भरवा ली। बनिए से सिगरेट के तीन पैकेट उधार ले लिये। पैकेट 'फिरन' की जेब में ठूंस कर उसने डॉक्टर से कहा—"अब मुझ से सारा शहर श्मशान घाट ले जाने को कहो। मैं एकदम 'रेडी' हूँ।"

"नानबाई से 'स्कोर' नहीं पूछा?"

"उसके ट्रांजिस्टर के सेल्स खत्म हो गए थे।" उसने पैकेट से दो सिगरेटें निकालीं। एक डॉक्टर को दी और एक खुद सुलगाई। डॉक्टर ने कान का अधजला सिगरेट फेंक दिया।

"मेरा ख्याल था आज सारे दिन कमेण्ट्री सुनेंगे। किसे मालूम था कि यह मुसीवत आज ही आएगी ? यह बताओ, फारिग कब तक हो जाएंगे ?"

"एक-दो बजे तक।"

"कमेण्ट्री सुनें या···" टार्जन को बीच में ही कोई और बात याद आ गई और उसने डॉक्टर से पूछा—

"पडोसन कैसी है?"

"बकवास।"

'मैदान वाली ?"

"वही सिर दर्द।'

"इस पार ?"

"कौन जाने। कल ही तो लगी है।"

"उस पार ?"

"सुना अच्छी है।"

"अगर एक बजे तक फारिग हुए तो चलेंगे, नहीं तो कण्मेट्री सुनेंगे।"

"इस बार मैं थर्ड क्लास में नहीं बैठूंगा।"

टार्जन ने उसे थोड़ी देर के लिए घूरा और फिर कहा—

"यह बालकनी में सिनेमा देखने का शौक कब से हुआ है ?"

पैड़रो ने जब देखा कि मां मिट्टी में बदल गई है तब वह न रोया और न चिल्लाया। वह चुपके से पहलवान के घर गया। पहलवान ने पहले सेठ को खबर कर दी और ब्राह्मण को बुलाने चला गया। रास्ते में उससे डॉक्टर का छोटा भाई मिला, उसके हाथ उसे भी समाचार भेजा। सेठ ने पचास-साठ रुपए जेब में डाले और सीधा मृत्यु-सामग्री-भण्डार की ओर चल पड़ा। जब वह वहां से सामान लाकर पैड़रो के पास पहुंचा तब वह मां को पुकार-पुकार कर जोर से रोने लगा, जिससे दो चार मोहल्ले वाले भी जमा हो गए।

एक ममेरे बहनोई को छोड़कर पैंड़रो का शहर में कोई रिश्तेदार नहीं था। वह भी पांच-छह मील दूर रहता था। पैंड़रो ने उसे खबर नहीं की। अगर खबर की होती तब भी वह नहीं आता। इस बात का पैंड़रो को पूरा यकीन था। दरअसल उसे शहर या गांव में रहने वाले अपने सभी रिश्तेदारों से नफरत थी। सच पूछो तो मां ही वह रस्सी थी, जिसने उसे रिश्तेदारों के साथ बांध रखा था। आज मां मरी और आज ही यह रस्सी भी टूटी। अब वह आजाद था। हर प्रकार से आजाद। अब उसके लिए रिश्तेदारों को हाथ जोड़ना जरूरी नहीं था। हर साल अपने बाप का श्राद्ध करना जरूरी नहीं था। हर रात घर लौटना जरूरी नहीं था। अब वह वही करेगा जो उसका मन चाहेगा। आज से वह खुद अपना और अपने घर का मालिक है।

घंटे-भर बाद पहलवान ब्राह्मण को साथ लेकर आया। एक मोहल्ले वाली शव के स्नान के लिए पानी गरम करने लगी। दूसरी ने आंगन के एक कोने को लीप डाली; ब्राह्मण पैंड़रो से मां का क्रिया-कर्म कराने लगा। पैंड़रो ब्राह्मण के आदेशों पर अपने जनेऊ को कभी बायीं और कभी-कभी दाहिनी ओर पहने रहा था कि टार्जन और डॉक्टर आ गए।

टार्जन सीधा पैंड़रो के पास चला गया और उसके कान में बोला—"रुपया पैसा पास है ?"

"हां, है।"

"इसी मां के मरने की कसम खाओ।"

"मां की कसम, मेरे पास पैसे हैं।"

"तब ठीक है।" वह आंगन में एक तरफ औंधे पड़े ओखल पर जा बैठा। जब मां के शव को नहलाया जाने लगा तब उसने जाकर पहलवान से कहा—"असल में बुढ़िया बड़ी खुदगर्ज निकली। खुद गरमा-गरम पानी से नहा रही है पर बेचारे पैंड़रो से वितस्ता के बरफ जैसे ठंडे पानी में गोते लगवाएगी।"

स्नान के बाद मां को कफन पहनाकर अरथी पर रखा गया। टार्जन और सेठ ने अरथी उठाई। डॉक्टर ने तीसरा कोना अपने कन्धे पर रखा। चौथा कोना पहलवान पकड़ने वाला था कि सेठ बोला—"रे मुल्ले ! तू हाथ न लगा। हमारा मुर्दा नापाक हो जाएगा।"

"अरे, अगर बुढ़िया को मालूम हो गया कि मुसलमान उसे कन्धा दे रहा है तो वह अरथी से नीचे कूद पड़ेगी।"

टार्जन ने कहा।

"लो, तुम ही सवारी दो बुढ़िया को।" पहलवान पीछे हटा।

"मगर मरघट में मैयत मुसलमान ही जलाएगा। सालो, पैदा भी हमारे हाथों होते हो और राख भी हमारे हाथों?"

आखिर पडोस के एक लड़के ने चौथी ओर से अरथी उठाई और श्मशान-यात्रा शुरू हुई।

सबसे आगे पैड़रो अन्त्येष्टि का टोकरा थामे चल रहा था। उसके साथ ही सिर से पांव तक मोटी ऊनी लोई में शरीर छिपाए ब्राह्मण चल रहा था। उसे इस कड़ाके की ठंड में घर से निकलना मुश्किल हो गया था। और वह मन ही मन सोच रहा था—डॉक्टर आने से इनकार कर सकता है। वकील इनकार कर सकता है। मगर लानत हो हमारे पेशे पर हम इनकार नहीं कर सकते। और फिर कौन जाने इस दलिद्दर से कुछ मिलेगा भी या नहीं?

पैड़रो और ब्राह्मण के पीछे-पीछे टार्जन, सेठ, डॉक्टर और पड़ोस का लड़का अरथी उठाए चल रहे थे और अरथी के पीछे-पीछे पहलवान और चन्द मुहल्ले वाले चल रहे थे। थोड़ी दूर तक अरथी के साथ चल कर मुहल्ले वाले अपने-अपने घरों को लौटे।

अन्त्येष्टि को टोकरा थामे पैड़रो नाक की सीध में जा रहा था। पहले उसने सोचा कि मां के मरने से वह आजाद हो गया, मगर अब उसे लगा कि वह आजाद नहीं, आवारा हो गया। जो रस्सी उसे किनारे से बांधे हुए थी, वह टूट गई और अब वह जिन्दगी की बाढ़ में बहता रहेगा, बस बहता रहेगा; बिना कोई मंजिल या किनारा पाये, जब तक जिन्दा है बहता रहेगा। मां उसे गालियां और बद्दुआएं देती थी मगर कभी-कभी आशीर्वाद भी देती थी। घर-खर्च के लिए रोज-रोज उसके साथ झगड़ती थी पर महीने के आखिरी दिनों में उसे सिगरेट के लिए जाने कब से बचाये पैसे भी देती थी। अधिकतर उससे रूठी रहती थी, लेकिन किसी-किसी समय उसे गले भी लगाती थी। अब न तो कोई

उससे रूठेगा न ही प्यार करेगा। न उसका कोई मरेगा और न ही वह किसी के लिए मरेगा। अपने सफर में वह बिलकुल अकेला है और सफर बहुत कठिन है··· ।

सहसा उसने पीछे पलट कर देखा और उसके पांव तले की जमीन खिसक गई ! वह इस समय सचमुच अकेला अन्त्येष्टि का टोकरा थामे चल रहा था । न उसे साथ चलता ब्राह्मण कहीं नजर आया, न मां की अरथी और न अरथी उठाने वाले। बात क्या है ? कहीं वह सपना तो नहीं देख रहा है ? श्मशान-स्वामी कोई लीला तो नहीं रच रहा है ? आखिर उसे कुछ दूर पर एक दुकान के पास खड़ा सिगरेट सुलगाता ब्राह्मण दिखाई दिया तो उसकी जान में जान आई। मगर बाकी लोग कहां हैं ? उन्हें जमीन खा गई या आसमान निगल गया ?

ब्राह्मण सिगरेट सुलगा कर आया तो उसने पैड़रो को बीच सड़क पर परेशान सा अकेला खड़ा पाया । उसकी समझ में भी नहीं आया कि अरथी कहां गायब हो गई। वह बोला—

"सुनो, तुम्हारे भाग्य में जाने क्या देखना लिखा है ! उन राक्षसों के पांव कोहरे से फिसल गये होंगे और शव नीचे गिरा होगा। यह तो बहुत बुरी बात हुई।"

पैड़रो का दिल पहले ही कह रहा था कि उसे और भी बुरे दिन देखने होंगे। ब्राह्मण ने कुछ झूठ तो नहीं कहा । मगर उसका दिमाग सोच-सोचकर हार गया कि वे गये तो कहां गये ? माना गिर ही पड़े होंगे। फिर भी धरती में समा नहीं जाते ? ब्राह्मण अशुद्ध संस्कृत में 'क्षमा करो मेरे अपराध शिव-शिव शम्भु हे महादेव शम्भु' का पाठ कर रहा था। टोकरे में रखा दीया कब का बुझ गया था और उसकी अधजली बाती से धुएं की काली लकीर-सी निकल रही थी। पैड़रो हैरान और परेशान ही नहीं, भयभीत भी था ।

कुछ मिनट बाद उसे बहुत दूर—सड़क के आखिरी छोर पर अरथी का धुंधला-सा आकार दिखाई दिया। उसकी जान में जान आयी। कुछ काल बाद मां की अरथी उसके निकट पहुंची ।

"तीन गिरे।" निकट पहुंच कर टार्जन चिल्लाया । ब्राह्मण की छाती धक

से रह गई—"क्यों वे राक्षसो ! क्या तीन बार शव,नीचे गिरा ? त्राहि-त्राहि !"

"नहीं महाराज, मेरे शेर 'चन्द्रा' ने तीन विकेट लिये—समझे ?'

"साले, चुप रह।" सेठ गुस्से से अपने होंठ काट रहा था।

"रसूल-ए-पाक की कसम, हद हो गई।" पहलवान ने पैंड़रो से कहा—"सुन बदबख्त, शाही पान वाले के पास पहुंचते ही टार्जन के पांव में अचानक 'ब्रेक' लगी। कमीना कमेण्ट्री सुनने लगा। हमने बहुत कहा। पान वाले ने उसके पैरों पर अपनी टोपी रखी। लोग कन्धों पर ताबूत रखे कमेण्ट्री सुनते देखकर हमें गालियां देने लगे। मगर टार्जन के कदम ही नहीं उठे। आखिर पान वाले ने रेडियो बन्द किया।"

"भाइयो, जब बुढ़िया ने इन सत्तर सालों में मरघट पहुंचने की जल्दी नहीं दिखाई तो मेरे ही दस मिनटों में कोन-सी देर हो जाती ?" टार्जन ने सफाई दी।

"इसे कहो कि जबान को लगाम दे।" क्रोध से सेठ का सारा शरीर कांप रहा था—"अगर यह चुप नहीं रहा तो मैं बुढ़िया को नीचे फेंक कर भाग जाऊंगा।"

ब्राह्मण ने पैंड़रो को डांटा—"राक्षसो, तुम आदमी हो या रीछ ! मैंने कान पकड़े जो फिर कभी···मगर अब तेरा कौन है जो मरेगा ?"

श्मशान में टार्जन, सेठ, डॉक्टर और पड़ोस के लड़के ने अपने कन्धों से बोझ उतारा। मरघट का मुसलमान ठेकेदार चिता बनाने लगा। पैंड़रो ब्राह्मण के आदेशों की प्रतीक्षा करने लगा। तभी टार्जन बोल उठा—"सुना तुमने ? इस डॉक्टर का 'लव' चल रहा है।"

सभी ठठा करके हंस पड़े। फिर पहलवान ने डॉक्टर से पूछा—"प्यारे, किसके साथ ?"

पड़ोस का लड़का तनिक शरमा गया।

"यह उसके घर का सारा काम करता है। उसके साड़ी-ब्लाउज धोता है। कपड़े प्रेस करता है। क्यों वे सेवा का कुछ फल भी मिलता है या यों ही…।"

"मैं घूंसा मार बत्तीसी बाहर कर दूंगा, वह मेरी मां है।" डॉक्टर नाराज हो गया।

"इसे ताने क्यों देता है?" पहलवान ने टार्जन से पूछा—"तुम अपने डेरा के मालिक के घर आते-जाते नहीं हो?"

"जाये मेरी जूती!" टार्जन ने कहा—"घर जाने से वह हमें मशीन-मैन से मैनेजर तो नहीं बनाएगा। हम तेरी तरह लीडर नहीं बनना चाहते हैं।" फिर सबको सुनाते हुए उसने कहा—"सुना तुम लोगों ने पहलवान ने लीडरी छोड़ दी।"

"कब से?" डॉक्टर ने हैरान होकर पूछा।

जब से इसे पाकिस्तानी पोस्टर लगाने पर पुलिस पकड़कर ले गई। और जिन्होंने इसे यह काम सौंपा था उन्होंने बात फैला दी कि इसे जेब काटने के जुर्म में धर लिया गया था।"

सभी हंस पड़े। पहलवान के चेहरे पर क्षण-भर के लिए अप्रिय याद की छाया पड़ी।

"उठो शव को चिता पर रखो।" ब्राह्मण की आवाज सुन कर चारों उठ खड़े हुए।

"हम तैयार हैं।" टार्जन ने कहा—"कहो तो तुम्हें भी…"

पर ब्राह्मण ने उसकी बात नहीं सुनी।

चिता से अब आग की लपटें नहीं उठ रही थीं। बस, अंगारे चटककर राख हो रहे थे। सेठ ने पैड़रो के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"चलो, अब राख को टुकर-टुकर देखने से क्या मिलेगा।"

"चलो।" पैड़रो उसका सहारा लेकर चलने लगा।

"टार्जन कहां है।" पैड़रो ने पूछा।

"ब्राह्मण और उस लड़के की तरह वह भी भाग गया ? कहां गया होगा ?" डॉक्टर ने पूछा।

"मुझे मालूम है।" पहलवान ने कहा—"कमीना जाकर कमेण्ट्री सुन रहा होगा। मिड आन और सिली मिड आन में फर्क नहीं जानता, फिर भी बड़ा विकेट का साला बनता है। बिरादरी को छोड़ कर उसे नहीं जाना चाहिए था।"

"नहीं जाना चाहिए था।" सेठ ने उसका समर्थन किया। कुछ कदम चल कर वे वहां पहुंचे, जहां मरघट की सीमा खत्म होती थी।

पैंड़रो, डॉक्टर और सेठ ने पीछे मुड़कर बुझती चिता को प्रणाम किया। तभी पहलवान चिल्लाया—"वह देखो, उस चिनार की ओट कौन खड़ा है।"

"यह तो अपना टार्जन है।" डॉक्टर ने कहा।

चारों वापस उसके पास चले गये।

टार्जन चिनार से टेक लगाये आकाश में ठहरे धुएं की ओर एकटक देख रहा था। पैंड़रो ने उसका हाथ पकड़कर कहा—

"चलो यार, अब यहां क्या रखा है ?"

टार्जन ने जोर से उसे अपने सीने के साथ भींचकर कहा—

"तुमने आज अपने हाथों अपनी मां को राख कर डाला। मगर मैं तब बहुत छोटा था। बस छह-सात महीने का। मैं यह भी नहीं कर पाया।"

टार्जन और पैंड़रो फूट-फूट कर रोने लगे। डॉक्टर और सेठ यह स्थिति देखकर असमंजस में पड़ गये। डॉक्टर उन्हें शायद डांटता भी, मगर पहलवान ने उसे इशारे से समझा दिया—"रो लेने दो। हम सबके लिए रोना बहुत जरूरी।'

अंधी गली

• जवाहर लाल कौल

वह ऊपर वाली बर्थ पर चित्त लेटी और छत के पंखे को लगातार घूर रही थी। उम्र सत्रह-अठारह की रही होगी, देखने में भी खूबसूरत थी—गठीला बदन, लम्बा कद और कमल पत्तों की-सी आंखें। डिब्बे में लोग आ-जा रहे थे, कुछ यात्री थे, कुछ उन्हें विदा देने वाले रिश्तेदार! गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर ही खड़ी थी। बाहर-भीतर बड़ा शोर था, तरह-तरह की आवाजें। लेकिन वह सब से बेसुध जैसे शून्य में ही खो गयी थी। गाड़ी ने आखिरी सीटी बजाई और धीरे-धीरे सरकने लगी। गाड़ी की खड़-खड़ को छोड़ सब आवाजें थम गयी थीं, लेकिन वह यथावत् पड़ी रही।

'क्या नाम है तुम्हारा बेटी?' निचली बर्थ पर बैठी एक औरत ने पूछा। उसने सुना नहीं। औरत ने फिर पूछा, 'सो गयी क्या?' अब वह चौंकी।

'जी नहीं।'

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'तारा।'

'कालेज में पढ़ती हो?'

'जी……' एक क्षण के लिए हिचकिचाई, फिर बोली, 'जी हां।'

'कहां तक जा रही हो?'

'दर्दपुर।'

'दर्दपुर ? यह कहां है ?'

'अजमेर से 30 किलोमीटर दूर।'

'अकेली ?'

'अजमेर में कोई लेने आयेगा।'

फिर बातचीत का सिलसिला टूट गया। वह सोचने लगी कि क्या खूब नाम रखा गया है उनके गांव का दर्दपुर--सचमुच ही पूरे जहान का दर्द समा गया है उस छोटे से गांव में—मुफलिसी, बेरोजगारी, अराजकता, शोषण। सात बरस बाद वह गांव जा रही है। क्या वह वैसा ही होगा जैसा उसने देखा था। अचानक उसे घर की याद आ गयी।

हर बड़े गांव की तरह दर्दपुर दर्द देने वालों और दर्द सहने वालों के बीच बंटा था। तारा का घर दूसरे टोले में था, एक टूटी-फूटी झोंपड़ी, जिस की कच्ची दीवारें किसी भी दिन ढह सकती थी। छत कई जगह से उखड़ी थी। तेज वर्षा में अमूमन घर के लोगों को कमरे के चार कोनों की शरण लेनी पड़ती थी। बीच में तो फूस की छत्त से टप-टप बूंदें गिरती रहती थीं। बापू की याद आते ही तारा सिहर उठी। हरदम खांसते रहते थे। छाती की सभी हड्डियां गिनी जा सकती थी। हाथों और बाजुओं में नीली-नीली नसें इतनी उभरी रहती थीं कि लगता था कि ऊपर से किसी ने बिजली के तार चिपका दिये हों। तारा के मन में अक्सर यह प्रश्न उठता था कि अगर बापू का रंग काला ने होता तो उनका चेहरा कैसा लगता, नीला कि सफेद ? और मां ? मां की याद आते ही तारा के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गयी। कितना लड़ती थी वह मां से······

उस दिन वह जंगल से लकड़ियां बटोरकर ला रही थी। घर पहुंचते-पहुंचते देर हो गयी थी। सो आगंन की टूटी दीवार के साथ खडी सुस्ताने लगी। छोटी बहन रधिया गाय के सामने सूखी घास डाल रही थी और अपने आप से ही कुछ गुन-गुना रही थी। मां, सतिया घर के दरवाजे पर आई।

'अरी ओ, रधिया, कहां गयी री तारा, इत्ती देर हो गयी, अभी तक चूल्हा भी नहीं जला। लकड़ी के बदले अपने साथ पैर डाल दूं चूल्हे में ?'

'आ रही होगी।' रधिया ने मां की ओर देखे बिना ही जवाब दिया।

'अब कब आयेगी, सांझ हो चली है।'

'वह आ नहीं न रही,' रधिया ने आंगन के बाहर तारा को देखते हुए कहा, 'कहो तो माला बिन्हा आऊं ?'

'तारा बोझा लेकर आंगन में आ गयी और लकड़ियां नीचे पटक दी।

'कहां थी तू अब तक ?' मां ने पूछा।

'ससुराल।' तारा ने शोखी से कहा।

'तेरी ससुराल तो जमराज के यहां ही होगी।'

'तो क्या जमराज की रानी तो बनूंगी ना ?'

मां गुस्से में उसकी ओर लपक पड़ी, 'आ मैं तुझे बनाती हूं रानी !' लेकिन तारा हंसते हुए एक ओर भाग गयी।

'मुई रोने की बात पर भी हंसती रहती है।' और चिढ़ कर सतिया घर के अंदर चली गयी।

ट्रेन किसी छोटे स्टेशन पर रुक गयी थी। एक लड़का अपनी बुढिया मां को लेकर डिब्बे में आया। बुढ़िया के झुर्रियों से भरे चेहरे को देखकर तारा को रहमती की याद आ गयी। सारे गांव के बच्चे रहमती को नानी कह कर पुकारते थे……।

रहमती अपने घर के आंगन में धान सुखा रही थी। पास में ही एक कूड़े के ढेर पर एक मुर्गी अपने चूजों समेत कुरेद-कुरेद कर चुग रही थी कि तारा अपनी बकरी का पीछा करते कहीं से निकल आई। बकरी चूजों के उपर से छलांग मार कर भाग निकली तो मुर्गी डर कर कूं-कूं करते हुए धान के उपर से भागी। कुछ दाने बिखर गये।

'तेरा सत्यानाश हो कलमुंही।' बुढ़िया ने तारा को गाली दी। तारा आगे निकल चुकी थी लेकिन लौट आई, 'क्या नानी, तू भी खामखाह शोर मचाती हो, दो चार दाने ही तो गिरे। तेरी ही मुर्गी खाकर मोटी होगी।'

'तू ठहर सतिया से तेरी टांगें न तुड़वा दी तो कहना।'

तारा एक क्षण शरारत से उसे देखती रही फिर अचानक आकर बुढिया का गाल चूम लिया। बुढ़िया कुछ क्षण तो हक्की-बक्की-सी रह गयी फिर मुस्करा दी।

'न मालूम क्या खाकर जना था इस लौंडिया को सतिया ने।'

'तुझे नहीं मालूम नानी ? उस दिन तो घर में कुछ भी नहीं था। मैंने ही बेसरम घास लाकर खिलाई थी अम्मा को।'

दोनों हंस पड़ी थीं।

वे गरीबी के दिन याद करके तारा को अब भी डर लगता है, कितनी ही बार वह बिना एक कौर मुंह में डाले सो जाया करती थी। बापू बेखेत-मजदूर था, पंडितपुरे में बड़े किसानो के यहां मजदूरी किया करता था लेकिन यह काम भी हर समय नहीं मिलता। उन दिनों फाकों की नौबत आ जाती थी। भाई चंदर अपनी बीबी-बच्चों समेत अजमेर के रेलवे स्टेशन पर कुलीगिरी करता था। कुछ पैसा घर भेज देता, कभी नहीं। अम्मा-बापू बार-बार इसी बात पर झगड़ते रहते थे! एक कहता चंदर को बूढ़े बाप की चिंता नहीं तो दूसरा उसका बचाव करता और तभी एक दिन······

गांव के बाहर जंगल क्या था, एक ऊबड़-खाबड मैदान; जिस में कुछ बबूल, कीकर आदि के पेड़ थे, बाकी सब कटीली झाड़ियां। गांव के सभी पशु यहीं चरा कहते थे और लड़के-लड़कियां यहीं से सूखा काठ ले जाकर चूल्हा जलाती थीं। एक पेड़ के नीचे बच्चे चोर-सिपाही खेल रहे थे। तारा थानेदार थी। दो और हवां उसके सिपाही। एक लड़का रोने का नाटक करते हुए थानेदार के पास आया।

'मैं लुट गया दारोगा साहब, मेरे घर चोरी हो गयी।'

'क्या चुराया ?'

'खटिया, साहब।'

'तुम उस समय कहां थे ?'

साहब उसी पर सोया था।'

'हूं, बड़ा सातिर चोर है। लेकिन जायेगा कहां, अभी पकड़ता हूं। थानेदार ने फिर आदेश दिया, 'चोर की तलाश करो।' और सभी बच्चे इधर-उधर भाग-भाग कर तलाश में लग गये। तभी रघू ने सारा खेल बरबाद कर दिया। रघू गांव का बड़ा-सा लड़का था—एकदम लुच्चा, उसने एक छोटी लड़की को गोद उठा कर कहा, 'यह लो दरोगा, यह चोर है।'

तारा ने डांटते हुए कहां —'छोड़ दे इस रघू !'

'नहीं छोड़ता।'

'तुम्हें शर्म नहीं आती छोटे बच्चों के साथ खेलने में, इतना बड़ा आदमी हो गया है।'

'तू तो छोटी नहीं, तेरे साथ खेलूं।'

तारा का पारा गर्म हो गया, 'ठहर मैं सिखाती हूं खेल इस ऊंट को।' और जंगली बिल्ली की तरह झपट पड़ी रघू पर। रघू इस अप्रत्याशित आक्रमण के लिए तैयार नहीं था। गिर पड़ा। तारा ने उसके बाल खींचे, मुंह नोच लिया। चारों ओर शोर मचा। कोई कहता, 'छोड़ दे तारा' तो कोई कहता 'मार इस कमीने को।' हालात अपने प्रतिकूल देखकर रघू भाग खड़ा हुआ। लेकिन फिर खेल नहीं चला अलबत्ता एक दूसरा ही खेल शुरू हुआ। तारा की जिन्दगी का खेल।

गांव से रधिया आ पहुंची।

'तू कैसे आई री ?'

'बापू ने बुलाया है तुझे।'

'काहे ?'

'क्या पता ?'

और तारा रधिया को वहीं छोड़ घर की ओर चल पड़ी…

गांव में वह आखिरी दिन था तारा का। वह दिन याद करके तारा के दिल में अजीब प्रकार की भावनाएं उठती हैं। वह आज तक नहीं समझ पाई कि

उसे प्रसन्न होना चाहिए कि दुःखी। जंगल से वापस घर पहुंची तो भाई चदंर, पिता काली और मां सतिया वहां मौजूद थे। चदंर उसे समझाने लगा, 'तारा, मैंने तेरे लिए शहर में एक बढ़िया नौकरी का प्रबंध किया है। तुझे बड़ा मजा आयेगा। दिल्ली शहर देखेगी तो दंग रह जायेगी।'

'मुझे शहर नहीं जाना।'

'देखो बेटी, तू तो जानती है हमारी हालत। यहां तुम्हारे बापू को काम नहीं मिलता, बीमार भी रहते हैं। तू शहर जायेगी तो हमारी भी कुछ मदद हो जायेगी।' यह दलील थी सतिया की। लेकिन तारा नहीं मानी, 'जैसे तुम लोग जी रहे हो मैं भी जी लूंगी। क्या मैं इत्ती बुरी हूं अम्मा, कि तू मुझे घर से निकाल रही है।' बड़ा हंगामा हुआ था उस दिन। बारी-बारी से सब उसे समझा रहे थे कि जिनके घर वह काम करने जा रही है वे बहुत अच्छे लोग हैं, अच्छे खाने, अच्छे कपड़ों का भी लालच दिया गया। आखिर में काली रो पड़ा। 'मेरे तन में थोड़ा भी दम होता तो यह दिन देखने को नहीं मिलते।' बापू के आंसू बह नहीं देख सकी, 'बापू रो नहीं, तुम चाहते हो तो मैं जाऊंगी।'

और तारा खन्ना साहब के साथ दिल्ली चली आई। नयी दिल्ली स्टेशन पर जगमगाती रोशनी को देखकर सचमुच तारा को लगा कि वह किसी परी-लोक में आ गयी है। लेकिन खन्ना साहब के घर में कदम रखते ही उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया। बड़े से ड्राइंगरूम में घर के सब लोग उसे इस तरह घूर रहे थे जैसे वह कोई लड़की न होकर अजीब प्रकार का जानवर हो। उसे याद है जब पहली बार उसने मोटे कालीन पर पांव रखा था तो पांव जैसे अंदर ही धंस गये थे। घबरा कर उसने पांव वापस खींच लिया। कई दिन तक वह नंगे पांव कालीन और सोफे पर बैठकर गुदगुदी महसूस करती थी। सब से अचरज की बात तो वह काला यन्त्र था जो पहले घंटी बजाता था फिर आदमियों की तरह बोलता था।—ये लोग इसे टेलीफोन कहते थे। और वह डिब्बा जिसमें 'सिलेमा' की तरह तस्वीरें आती थीं और बोलती थी···

ड्राइंगरूम में टेलीफोन की घंटी बजी। तारा फोन के पास आई तो सही, लेकिन चोंगा उठाने का साहस नहीं हुआ। फिर पलट कर दूसरे कमरे में जाकर श्रीमती खन्ना से बोली, 'बीबी जी, वह बोल रहा है।'

'कौन ?'

'वही जिसमें घंटी बजती है।'

'ओ कौन आया है, देखती हूं।'

तारा श्रीमती खन्ना को बोलते हुए देख-सोच रही थी कि क्या कभी मैं भी इसमें बोल सकूंगी। तभी दूसरे कमरे से निशा की आवाज आई, 'तारा जरा इधर तो आ।' निशा खन्ना साहब की बड़ी बेटी थी। 'मैंने तुझे बाल संवारने को कहा था न ?'

'संवरे तो हैं।'

'ये संवरे हैं, आ यहां बैठ।'

पास बैठी छोटी मुन्नी बोल पड़ी, 'दीदी मुझे एक आइडिया आया।'

'सुनाओ अपना आइडिया, तुझे तो नित नये आते रहते हैं।'

'दीदी, क्यों न तारा के बालों का कट करें।'

'हां ठीक हैं, लम्बे बाल इससे संवरते नहीं।'

तारा घबरा गयी, 'नाई आयेगा ?'

'नहीं सैलून ले जाएंगे तुझे। अब ये नहीं पूछना कि सैलून क्या होता है।'

रोज ही तारा के साथ कुछ-न-कुछ नया होता रहा। कभी कपड़ों का डिजाइन बदला तो कभी बोलने-चालने का तरीका। साल भर बाद तो तारा पढ़ना-लिखना भी सीख रही थी।

पांच साल हुए। घर में मेहमान आये थे। एक पुरुष, एक औरत और एक बच्चा। ड्राइंगरूम में वे लोग खन्ना और श्रीमती खन्ना से बातचीत कर रहे थे। तारा चाय की ट्रे लेकर आई। उसने टेबुल पर ट्रे रखी, फिर चाय बनाने लगी।

'चीनी कितनी लेंगी ?'

'एक चम्मच।' औरत ने कहा।

'मेरे लिए दो।' पुरुष बोला।

'और आप ?' तारा ने बच्चे से पूछा, लेकिन जवाब उसकी मां ने दिया, 'यह चाय नहीं पीता ।'

'तो आप क्या पीते हैं ?' तारा ने फिर बच्चे से पूछा ।

'कोक ।'

'अच्छा ? चलिए आप मेरे साथ, आपको कोक पिलाते हैं हम ।'

तारा बच्चे को लेकर रसोई में जा ही रही थी कि टेलीफोन की घंटी बजी । तारा ने चोंगा उठाया, 'हेलो, जी हां···जी देखती हूं ।' फिर चोंगे पर हाथ रखकर खन्ना साहब से बोली, 'आपका है, कोई मिस्टर पांडे हैं ।'

'ओ हो वह बोर । कह दो हैं नहीं, बाद में फोन करेंगे ।

'हैलो, जी खन्ना साहब तो अभी घर पर हैं नहीं, आयेंगे तो रिंग करवाऊंगी अपना नंबर दीजिए···775480 । ठीक है ।'

कमरे से जाते-जाते उसने सुना कि मेहमान औरत श्रीमती खन्ना से पूछ रही है, 'यह आपकी बड़ी लड़की है ना ?'

'नहीं, वह तो कालेज गयी है । यह यहां काम करती है ।'

'अरे वाह, एकदम स्मार्ट और कल्चर्ड है ।'

तब तारा को अपने ऊपर बड़ा गर्व हुआ था और वह बेडरूम में बड़े-से शीशे के सामने खड़ी होकर अपनी ही सुन्दरता पर मुग्ध हो गयी थी···

लेकिन तारा के ग्रह फिर चक्कर में आ गए। जवानी के जोश में वह यह भूल बैठी कि चाहे वह कितनी ही सुन्दर और सभ्य क्यों न हो, है तो नौकरानी ही । वह अपने ऊपर वही मापदण्ड नहीं लगा सकती जो इस घर की किसी लड़की पर लागू होते हैं ।

बात एक मामूली घटना से शुरू हुई । वह पालतू कुत्ते जैकी को घुमा रही थी कि सामने से एक साइकिल सवार युवक चला आया । कुत्ता उस पर भौंका तो वह हड़बड़ा कर साइकिल समेत गिर पड़ा । तारा और युवक के बीच कुछ नोंकझोंक हुई तो वह जान-पहचान में बदल गयी । फिर मुलाकातें और एक दिन वह बेवकूफ युवक तारा के घर के अन्दर भी चला आया और पकड़ा गया ।

राज खुला तो तारा पर गाज गिरी। श्रीमती खन्ना अब तारा को अपने घर में रखने को तैयार नहीं थी । उसे वापस अपने बाप के पास भेज दिया गया... तारा को याद है कि जब घर से स्टेशन को चल पड़ी थी तो श्रीमती खन्ना को को छोड़कर सभी सदस्यों की आंखें नम थीं। जैकी कुत्ता भी पूछं हिल-हिलाकर तारा के चारों ओर घूमता रहा। तारा को अचानक महसूस हुआ कि बर्थ पर पड़े-पड़े न मालूम कब से उसकी आंखों से अश्रुधार बह रही है। ट्रेन किसी स्टेशन पर रुक रही थी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी दोनों हथेलियों से आंसू पोछ डाले और कपड़े समेटने लगी.........

गांव में बहुत कुछ नहीं बदला था। या यूं कहें कि इन सात सालों में तारा में जितना परिवर्तन आया था। उसकी तुलना मे गांव जहां का तहां था। जब लाजो चाची ने उसे देखकर चंदर से पूछा, 'यह कौन मेहमान है चंदर?' तो तारा को पहली बार एहसास हुआ कि वह इस गांव के लिए एक अजनबी है। यह अजनबीपन घर पहुंचकर और भी गहरा हो गया। उसे लगा कि वह गांव की भाषा भी भूल चुकी है। टूटी-फूटी झोपड़ी में प्रवेश करते ही तारा बैठने के लिए कुर्सी तलाशने लगी। क्योंकि जमीन पर उससे बैठा नहीं गया। फिर अपने ही बक्से पर जाकर बैठ गयी। उसकी यह गलतफहमी कुछ दिनों में साफ हो गयी कि वह इसी गांव कि लड़की है और यह गांव उसका जाना-पहचाना है। वह न अब गाय-बछिया संभाल पाती थी, न पानी की मटकी। वह गांव के रीति-रिवाजों में नहीं रम पा रही थी, और न पुरानी सहेलियों के साथ घुलमिल सकती थी।

तभी एक दिन मटकती, लचकती इस युवती पर रघू की नजर पड़ी। पुराने दिन होते तो तारा रघू की परवाह नहीं करती। पर यह तारा वह तो थी नहीं। गांव की नदी के किनारे तारा अपने विचारों में खोई बैठी थी कि उसे पानी में किसी और का प्रतिबिंब भी नजर आया। उसने पलटकर देखा रघू खड़ा था। रघू अब लंबा-चौड़ा जवान था। गांव वाले उससे डरते थे। लोग कहते थे कि रघू महीने-महीने गांव से गायब रहता है। कोई कहता था कि तस्करों के गिरोह में है तो कोई मानता था कि वह डाकू हो गया है। तारा उदासीन भाव बनाये बैठी रही। लेकिन रघू उसके बालों पर हाथ फेरने लगा।

'रघू, तू यहा से जा।'

'जाने के लिए थोड़े ही यहां आया हूं।'

तारा उठकर जाने लगी तो रघू ने उसे पकड़ लिया। वह चिल्ला पड़ी, 'बचाओ, बचाओ, लेकिन रघू ने उसके मुंह में अपना मफलर ठूंसा और घसीट कर पत्थरों के पीछे ले गया.........

गांव वालों ने तारा की चीखें सुनी थी। लेकिन कोई उसे बचाने नहीं आया किसी का कहना था, 'अरे कौन जाये उस मेम को बचाने। कोई बोला, 'बड़ा उत्पात मचा रखा है इस लौंड़िया ने, लौंड़े तो तब से काबू में ही नहीं रहे', 'मुझे तो उसी दिन मालूम था कि गांव की लड़कियों का चरित्र खतरे में है, जब इसने गांव में फिर से कदम रखा था' ......तारा को बचाना तो दूर, तय यही हुआ कि ग्राम प्रधान से पंचों की बैठक बुलाई जाय कि आखिर काली की लौंडिया का क्या किया जाये।

पंचायत हुई काली के लाख अनुनय-विनय के बाबजूद फैसला हुआ कि काली की लड़की गांव के लड़के लड़कियों के चरित्र के लिए खतरा बन गयी है और काली को एक महीने के भीतर तारा की शादी किसी दूर के गांव में करनी चाहिए।

चंदर ने किसी छोटे कस्बे से एक व्यक्ति को खोज निकाला, जिसे तारा की जरूरत थी। उसकी पहली पत्नी पिछले साल ही मर चुकी थी और अपने और दो बच्चों के लिए उसे मां की तलाश थी। लेकिन यह शादी नहीं हो पायी। बरात घर पर आ गयी थी कि पता चला कि तारा गायब हो गयी है। गजब का हंगामा हुआ। लाठियां और लालटेन लेकर लोग तारा को खोजने निकले पर वह नहीं मिली.........।

देर रात रघू के घर के दरवाजे पर किसी ने थपकी दी। रघू ने दरवाजा खोला तो घबरा कर पीछे हट गया। दरवाजे पर तारा खड़ी थी।

'डरो नहीं रघू, मैं बदला लेने नहीं आई हूं।'

'तो ?'

'मैं अन्दर आ जाऊं तो बता दूंगी। बाहर मेरी तलाश हो रही है', तारा अंदर आई और दरवाजा बंद कर दिया, 'रघू क्या तुम मुझे अपने साथ रखोगे ?'

रघू आश्चर्य से उसे देखने लगा ।

'देखो रघू, मैं इसी गांव मे पैदा हुई । तब तारा गरीब थी । लेकिन यह मिट्टी, ये लोग सब मेरे थे । मुझे यहां से उखाड़ दिया गया । फिर शहर में रोपा गया । लेकिन जब मुझे लगा कि यही मेरा वातावरण है तो फिर यहीं पटक दिया गया । शहर ने मुझे निकाल दिया है और आज गांव ने भी ।'

'लेकिन मैं...'

'तुम न उस समाज के हो न इस समाज के । तुम्हारी दुनिया अलग है । अंधकार की दुनिया जिससे हर समाज डरता है, दबता है ।'

'लेकिन तारा इस में हर समय खतरा रहता है ।'

'तो क्या हुआ ? किसी दिन गोली खाकर मर ही जाऊंगी । धीरे-धीरे मरने से एक साथ मरना क्या बुरा रघू ।'......

गांव वालों की आवाजें थम गयी थीं । लालटेन घरों में प्रवेश कर चुकी थीं । कहीं कोई कुत्ता रो रहा था कि गांव से बाहर मोटर सड़क की ओर जाने वाली पगडंड़ी पर दो आकृतियां आगे बढ़ती जा रही थीं ।

संत कवि श्री शंकर राजदान 'शंकर'

• पृथ्वीनाथ कौल "सायिल कश्मीरी"

ऋषि-भूमि कश्मीर ने ऋषियों, सन्तों, सूफियों तथा आचार्यों को जन्म दिया है। जिन्होंने अपनी योग्यता, ज्ञानबल तथा बुद्धिमता से अपनी मातृ-भूमि को प्रसिद्धि प्रदान की। इसकी अनुपमता, सुन्दरता, महानता तथा वैभव की विशेष रूप से बड़ाई की है। अपने तपोबल तथा अद्‌भुत चत्मकारों द्वारा इस पवित्र भूमि के माथे पर चार चांद लगाने के भरसक प्रयत्न किये।

कई-एक ऋषि चमत्कारों से इसका नाम विख्यात कर गए हैं। घोर तप साधे, गुफाओं, घने वनों, तथा निर्जन जगंलों में आसीन रहे लोगों को सत्यमार्ग दिखाया। इनमें से कई मस्तानों की तरह फिरते-घूमते रहे। अपनी अमृत वचनों तथा वाक्यों से इस भूमि को ख्याति प्रदान की। अपने इस कश्मीर मण्डल का गुणगान किया है। अपनी मातृभाषा कश्मीरी में, संस्कृत में, फारसी में, उर्दू तथा हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी कई ग्रंथ लिखे गए है। महानयप्रकाश हो या राजतंरगिणी, नीलमतपुराण हो या काव्यप्रकाश— इन ग्रंथों से यहां की सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी सभ्यता एवं संस्कृति की सुरक्षा तथा देख-रेख के काम में यहां के संत कवियों का बड़ा हाथ रहा है। अपने ऐतिहासिक विरवे की सुरक्षा के कार्य में वे सदा व्यस्त रहे हैं। इस कार्य में प्रयन्यशील रहे इन्हीं सन्त कवियों की श्रृंखला में श्री शंकर राजदान 19वीं शताब्दी के मध्यकाल में विद्यमान थे; आप एक प्रसिद्ध उच्चकोटि के संत तथा भक्त कवि थे। अपनी कविताओं तथा अपने पदों में प्राय: "शंकर" ही उपनाम के तौर पर प्रयोग में लाते थे।

कहा जाता है कि श्री शंकर राजदान का उनकी चमत्कारपूर्ण उक्ति "शेंकरन्य मकच' अर्थात शंकर की कुल्हाडी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। आप कन्याकदल (ह्ब्बाकदल), श्रीनगर, के एक पवित्र पंडित घराने में जन्मे थे। आपकी कृति-क्रियाओं की चर्चा चारों और फैली हुई थी। परन्तु बड़ी खोज के पश्चात भी अभी तक आपके पिता-माता का नाम ज्ञात नहीं हो सका, है न आपकी जन्म तिथि मालूम हो सकी है।

आपकी साहित्यिक रचनाओं के आधार पर पता चलता है कि इनका जन्म संवत् 1889 विक्रमी (1833 ई.) में हुआ था। आपके देहावसान का वर्ष 1931 विक्रमी (1875 ई.) माना गया है। आपकी जीवन यात्रा से सम्बन्धित वार्ताओं की खोज बराबर जारी है। अब तक मालूम हुई घटनाओं के आधार पर सर्व-सम्मति से यह प्रमाणित हो गया है कि आप का वास्तविक नाम शंकर राजदान था, जिस का प्रमाण तो इनके पदों में मिलता है। संत कवि शंकर ने बड़ी संख्या में लीलाएं, देवी-देवताओं के गुण-गान, तथा उनसे सम्बन्धित कथाएं-गाथाएं लिखी हैं। इन लीलाओं का एक संग्रह-संकलन आजकल प्रकाशनाधीन है। इस बात का मैं स्वयं साक्षी हूं क्योंकि नई प्रचलित कश्मीर लिपि में इसे ठीक प्रकार से लिखने तथा प्रेस के लिए तैयार करने की सेवा का भारी मैंने ही संभाला है जिसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूं। आपके ही एक वंशज श्री एम. के. रैणा छत्तावली मेरे पास यह संग्रह लेकर आए। वास्तव में श्री रैणा इस समय उनके आश्रम 'रतन ज्याति मंदिर' के प्रबंधक भी हैं। आपको इनकी कृतियों को प्रकाशित करने की तीव्र इच्छा है।

कश्मीरी लीलाओं की यह पांडुलिपि कश्मीर में निर्मित कागज पर प्राचीन ढंग से लिखी हुई है। इस कारण इस संग्रह को आधुनिक ढंग से लिखना आवश्यक था जो मैंने अपनी योग्यतानुसार किया भी।

श्री रैणा ने संत जी का रचा हुआ रामायण भी दिखाया। यह रामायण शारदा लिपि में लिखा गया है, परन्तु इसकी भाषा संस्कृत कही जाती है। मुझे यह संस्कृत तथा कश्मीरी की मिश्रित भाषा सी लगती है।

कश्मीरी रामायण को आरम्भ करने के समय श्री शंकर इस प्रकार कहते हैं:—

(क.) "ओं शोकलम् गोड़ शंकर करो !
गणीश्वरो नमस्कार ।"

(हि.) अर्थात् है शंकर ! तुम पहले आदि देव श्री गणेश को प्रणाम करके ही इस रामायण का शुभारम्भ करो ।

इसी प्रकार रामायण को समाप्त करने पर अन्त में यह पद कहते हैं—

(क.) शंकरण कष्ट दोमायन गोत्रणय,
वोनुय राम लोक रामायण ।

(हि) अर्थात् उस शंकर ने जिसका गोत्र कष्ट धोमायन है, रामायण की की रचना की है ।

पहली से यह स्पष्ट होता है कि शंकर उनका नाम था । और उसने ॐ शब्द के साथ ही अपनी ओर संकेत किया है । रामायण लिखने का शुभारंभ महागणेश का नाम लेकर ही करो जो हिन्दू धर्म के अनुकूल है ।

अन्तिम पंक्ति से "शंकर राजदान" का गोत्र मालूम होता है । 'कष्ट धोमायन' सचमुच ही राजदान वंश का गोत्र है । इस बात से भी सिद्ध होता है कि आप राजदान वंश के वंशज थे ।

इनकी लीलाओं, वाक्यों तथा इनकी विभिन्न रचनाओं में प्रायः "शंकर" नाम ही देखा जाता है । शंकर अपनी बाल्यावस्था से ही शुद्ध विचारधारा तथा शुद्ध वासनाओं का भंडार थे । कहा जाता है, आप शैशव से ही भगवत भजनों में मस्त रहते थे । भगवत्-भजनों में आपकी रुचि इतनी तीव्र थी कि कई दिनों तक खाने की ओर ध्यान ही नहीं जाता था, यहां तक कि अपने-आपको भी भूल जाते थे । कहते हैं, बाल्यावस्था में ही आपको वाक सिद्धि प्राप्त हुई थी । अर्थात जो भी वाक्य आपके मुंह से निकलता वह सत्य ही हो जाता था । वह पंद्रह वर्ष की आयु में ही अपने घर से निकल भागा था । अनुमान है कि उसके पिताजी उन दिनों कुलगाम में 'माल' के महकमे में एक कर्मचारी थे । अतः वह उसी के पास गए थे । वहां पर रह कर उस समय आपने बड़े-बड़े चमत्कार दिखाए हैं, जिनके फलस्वरूप उस प्रान्त के लोगों को न केवल आश्चर्य हुआ था, अपितु स्वामी जी

के प्रति प्यार और श्रद्धा की भावना उत्पन्न हुई थी। वे तन, मन एवं धन से स्वामी जी की भक्ति करने लगे। इन्हीं दिनों स्वामी जी उमादेवी के आश्रम जो श्रीनगर से 72 किलोमीटर कि दूरी पर स्थित है, गए थे। इस स्थान को "उत्तर सूत्रारी आंगन" कहते हैं। इसी स्थान के समीप अच्छाबल की एक छोटी सी पहाड़ी पर बड़े शान्त वातावरण तथा एकान्त में यह पवित्र प्रसिद्ध आश्रम आज भी श्रद्धालु भक्तजनों के आकर्षण का केन्द्र है। यह स्थान अत्यन्त सुन्दर तथा चित्ताकर्षक है। स्वामी जी ने यहां पांच वर्ष तपस्या की। उसके पश्चात् वे मंजगाम को पधारे। यह स्थान भी कुलगाम जिले का ही एक गांव है। यहाँ पर घने वनों के बीच में माता क्षीरभवानी का पवित्र मंदिर तथा अमृत-कुंड है। कहा जाता है—कि तुलामुला की माता क्षीर भवानी अर्थात् राज्ञी भगवती का पहला आसन यहीं पर था। और यहां से भगवती तुलामुला पधारीं।

एक दिन का वृत्तांत है कि स्वामी जी मंजगाम की ओर जा रहे थे, आकाश घने बादलों से घिरा हुआ था। बादलों की डरावनी गर्जन से लोग सहमे जा रहे थे। बिजलियां चमक रही थी, मूसलाधार वर्षा होने लगी। छोटी-छोटी नदियों एवं सरिताओं में बाढ़ आने लगी। परन्तु इसकी कोई चिंता न करते हुए स्वामी जी आगे ही आगे बढते गए। भगवत् भजन में लीन स्वामी जी रुकने का नाम तक न लेते थे। सामने से विशव नदी बहुत तेजी से बह रही थी। इस नदी का पानी इसके किनारों के ऊपर बह रहा था। यह विशव नदी कौंसरनाग से बहती है। अकस्मात स्वामी जी का पैर फिसल गया और स्वामी जी भी विशव नदी के तेज प्रवाह की लपेट में आकर बहने लगे। स्वामी जी ने बड़ा शोर मचाया, पर कोई सुनने वाला न था। नदी में बड़े-बड़े पत्थर लट्ठ तथा उन्मूलित पेड़ बह रहे थे। परन्तु स्वामी जी का साहस तिस पर भी न छूटा। उसे तनिक भी चिंता न हुई। न किसी प्रकार का भय ही लगा। ऐसे में स्वामी जी को एक आवाज सुनाई दी। बड़ी कठिनाई से पीछ मुड़कर देखा तो पाया एक बड़े पत्थर पर खड़ी कोई सुन्दर तथा रूपवती देवी अपनी साड़ी का एक सिरा बहुत जोर से पकड़े हुए थी और दूसरा सिरा स्वामी जी की ओर फेंकती जा रही थी; स्वामी जी ने साड़ी पकड़ी और देवी जी ने खींच-खींच कर स्वामी जी को अपने पास लाया, और आपके मस्तक पर तिलक लगाया। साथ ही खीर का नैवेद्य भी दिया। अब देवी जी ने पूछा—

"तुम यहां क्यों आए ? यहां तुमको कोई लाभ नहीं मिलेगा। देखते हो

यह सारा दृश्य, आपके ही कारण हुआ। अतः आपके लिए लौट जाना ही उचित है। मैं तुमको स्वामी जनार्दन दर (जिस को लोग श्रद्धा से जनकाक कहते थे) के हवाले करती हूं। वही तुम्हारा कल्याण करेंगे। उनके पास जाकर उन्हीं से उपदेश लेना"। यह कहते-कहते ही देवीजी अन्तर्धान हो गईं। स्वामी जी की समझ में नहीं आया कि ये कहां गईं। वे देखते ही रह गए। वे इसी चमत्कार के सोच में डूबे रहे कि आकाश देखते ही देखते निर्मल हो गया। वर्षा पूर्णतया बन्द हो गई। धूप निकल आई। सूर्य देवता के पुनः दर्शन हुए। नदी का पानी भी नीचे हो लिया। बड़ी देर सोच में रहे, स्वामी जी अब मन्जगाम के बदले श्रीनगर की ओर चल पड़े। मन में प्रसन्नता थी, वे पुलकित थे। और श्रीनगर की ओर ही बढ़ते रहे। पैदल चलने का उन दिनों रिवाज ही था। स्वामी जी चलते-चलते भी देवी जी के चमत्कार में लीन तथा मस्त थे। वे देवीजी की स्तुति तथा गुणगान और सराहना करते थे। वे मन-ही-मन अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते आगे ही आगे बढ़े। स्वामी जी की तीव्र इच्छा थी कि वे तुलामुला जाते। राज्ञा भगवती ने इसी कारण स्वयं ही इसके सामने प्रकट होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिए। स्वामी जी पर कृपा की, उसे अपने सच्चा भक्त मान कर उसका कल्याण किया।

कई लोगों का अनुमान यह था कि शायद देवीजी ने स्वामी जी को इसी कारण से श्री ज़नार्दन दर के पास भेजा कि वह उसी के वंश का था। और उनका विचार था कि यह देवी "रूपाभवाणी" होनी चाहिए। परन्तु यह सत्य नहीं था क्योंकि स्वामी जी अपनी एक लीला में स्पष्ट रूप से बताते हैं कि वह माता राज्ञा भगवती ही थीं—

क०— स्वमन लीला करहा चानी।
सोन्य भवाणी जय जयकार॥
गरि नेर ह्यथ दोद पानी,
ज़ाल, मोख, तीज़स करय जय जयकार॥
चय छख सम्सार सर तारवानी,
सोन्य भवाणी जय जयकार॥
तुलमुलि सिरिवम छख आसवानी,
(राज्ञा) रगिण्या येमिची रक्षाकार
राज़ा राज़न राज दिवानी,
सोन्य, भवाणी जय जयकार॥

अर्थात्—मैं अपने मन तथा अपनी लगन से आपकी लीला कहता हूं। हे क्षीरभवानी ! तुम्हारी जय जयकार हो। घर से दूध और शुद्ध जल लेकर मैं निकलता, आपके ज्वालामुखी तेज का जय जयकार करता। तुम ही हमको इस संसार रूपी सरोवर से पार लगाने वाली हो ? हे भवानी ! तुमको जय जयकार हो। तुम तुलामुला में आसनधारिणी हो, तुम ही रक्षा करने वाली राज्ञीमाता हो। तुम तो राजाओं को राज्य देने वाली हो। हे हमारी देवी तुम्हारी जय जयकार हो।

एक और पंक्ति में यूं कहते हैं:—

(क०)— हावतम दर्शन, छख प्रज़लवानी,
असुरन करूथ चेय समहार।
कश्मीर मंडलस छय दया चानी,
सोन्य भवाणी जय जयकार।

अर्थात्—हे तेजस्वी देवी ! मुझे भी शुभ दर्शन दीजिए। तुमने ही तो असुरों का संहार किया। इस कश्मीर मंडल पर तुम्हारी ही दया है। (सतीसर का जल सुखाकर राक्षसों को मारकर तुमने अपने भक्तों पर कृपा की) देवी ! तुम्हारी जय जयकार हो।

इन विचारों से यह बात सिद्ध होती है कि यह माता क्षीरभवानी ही थीं। जिनके शुभ दर्शन तथा दया-दृष्टि से स्वामी जी भी चमक उठे।

स्वामी जी ने श्री ज़नकाक दर ही को अपना गुरु मान लिया। श्री ज़नार्दन दर भी एक ऊंचे पहुचे हुए सिद्ध पुरुष थे। वे सफाकदल, श्रीनगर के निवासी थे। वे दरवंश से ही थे। स्वामी जी ने अपनी बहुत-सी लीलाओं में अपने गुरु (श्री जनार्दन दर) के विषय में लिखा है, जिनसे इनके जीवन से सम्बन्धित बहुत-सी घटनाओं का प्रमाण मिलता है तथा इस रचना की पुष्टि भी होती है।

निम्नलिखित तीन पद कश्मीरी भाषा में हैं। इनसे ये घटनाएं सिद्ध होती हैं:—

जनार्दन निर्मल परमीश्वरो
गोर वाख चानि सत्य चलि अंधकार। (1)

जनार्दन पानय छुय ईश्वरो,
गोर छय कासान खय गचर।
गोर आसवुन वति रहवरो,
गोर ईशरो दया कर। (2)

बीज निशि जोनुम छांडहन, गोरो,
दियम सुय पद कासि] अन्धर।
छाँड़िथ रोटुम जनारदन गोरो,
गोर ईशरो दया कर। (3)

अर्थात्—1. हे जनार्दन। तुम निर्मल परमेश्वर हो। आपके गुरु वाक्य से ही अन्धकार दूर हो जाएगा।

2. हे जनार्दन ! तुम स्वयं ही ईश्वर हो। गुरु मोहरूपी छाया तथा अन्धकार को दूर करता है। गुरु ही पथ-प्रदर्शक होता है। हे गुरु के रूप में ईश्वर ! तुम ही दया करो।

3. बुद्धि से यह विचारा कि गुरु को ढूंढ़ लूं। वही मुझे उच्च-पद देकर मेरे अन्धकार को दूर करेंगे। मैंने ढूंढ़कर श्री जनार्दन दर को अपना गुरु मान लिया है। हे गुरु के रूप में ईश्वर ! मुझ पर दया करो।

घटना इस प्रकार है कि जब स्वामी जी श्रीनगर पहुंचे तो सीधे श्री दर की शरण जाने का विचार करके वे सीधे सफाकदल की ओर जा रहे थे कि श्री दर पहले ही सफाकदल पुल पर पहुंच गए थे। इस प्रकार ये दोनों गुरु-शिष्य अनजाने में ही इसी सफाकदल पुल पर ही एक-दूसरे से गले मिले और इस प्रकार मिले जैसे वे आपस में चिर-परिचित हों। सीधे श्री जनार्दन दर के निवास-स्थान पर गए। स्वामी जी अपने गुरु-द्वार पर कई वर्ष रहे और पूर्ण रूप से उपदेश प्राप्त किया।

स्वामी जी ने बाल्यकाल में ही ऐसे चमत्कार दिखाए थे जिससे मानव की बुद्धि दंग रह जाती थी। देखने वाले चकित होते थे। ये चमत्कार आश्चर्यजनक ही थे। उदाहरणतया यह घटना लीजिए—

कहा जाता है कि जब स्वामी जी एक दिन अपने सहपाठियों के साथ अपने घर में पढ़ाई करते थे तो अचानक दीये में तेल खत्म हो गया। यह वह समय

था जब बिजली नहीं थी। मिट्टी का तेल भी प्रचलित न था। अर्ध रात्रि का समय था—तेल मिले तो कहां से। बाजार बन्द। प्रयत्न करने पर भी तेल मिलना असम्भव हो गया। स्वामी जी के सहपाठी सोच में पड़ गए परन्तु स्वामी जी टस से मस न हुए, जैसे कुछ भी बिगड़ा नहीं था। उसने दीये की ओर दृष्टि डाली तो दीया बुझने के बदले और चमकने लगा। प्रकाश पहले से अधिक हुआ। यह था स्वामी जी का बचपन का एक चमत्कार। इसी प्रकार इनके बचपन में दिखाए गए चमत्कारों की बहुत-सी घटनाएं प्रसिद्ध हैं। यही कारण था कि माता क्षीरभवानी ने स्वामी जी को श्री जनार्दन दर के पास भेजा था कि वह इस बालक को शांत करें तथा शांत रहने का उपदेश दें, जिससे उसका कल्याण हो। स्वामी जी अपने गुरु की गुणगाथा करते हुए अपनी एक रचना में कहते हैं :—

(क०) गोरु मोख कासतम गट गाशारो।

(1) बासतम गोर पदुक अन्तर।

(2) जनार्दन चय पानय=अज्ञान कासानय।
तीछिहम बासानय=करयो हर हरय।।

(3) जनार्दन कर में दया=अमर्यथ गनिमय।
शंकरस चानी दया=करयो हर हरय।।

(हि०) अर्थात्—हे गुरु! मेरे अन्धकार को दूर करो। आप तो स्वयं प्रकाश हैं। आपकी पदवी ऊंची है। आप स्वयं जनार्दन हैं। अज्ञान को दूर करते हैं। ऐसे ही मुझे लगते हैं। मुझे भी ज्ञान दो कि मैं भी हरि का नाम लूं। हे जनार्दन! मुझ पर दया करो। तुम अमृत से भरे हुए सम्पूर्ण दया सागर हो! शंकर दर तेरी ही कृपा हो! मैं हरि का नाम जप लूं।

कहते हैं इन चमत्कारों की शक्ति वापस लौटाने पर स्वामी जी ने गुरु की आज्ञानुसार बारह वर्ष "तोस मादान" नामक स्थान पर तपस्या की। तोस मादान गुलमर्ग और शोवयां के बीच में एक पहाड़ पर स्थिति है। यह स्थान घने पेड़ों से घिरा हुआ है। जब स्वामी जी ने बारह वर्ष की यह घोर तपस्या पूरी की तो छत्ताबल, श्रीनगर, आए। एक कुटिया बनाई और उसी में रहने लगे। उन दिनों छत्ताबल में कोई आबादी या बस्ती नहीं थी। थोड़े से नाममात्र हिन्दुओं के घर थे।

यह भी कहा जाता है कि स्वामी जी को यहां रहना इसलिए पसंद आया होगा कि वे यहां से अपने गुरु के पास सुगमता से बार-बार आ-जा सकते थे। क्योंकि श्री जनार्दन दर सफ़ाकदल के निवासी थे जो स्वामी जी की कुटिया से अधिक-से-अधिक एक किलोमीटर दूर पड़ता था। स्वामी जी के यहां आसन जमाने के पश्चात् बहुत से लोग यहां रहने के लिए आए और बस गए। धीरे-धीरे यहां की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई।

अब तो बहुत से लोग इनके शिष्य तथा भक्त बन गए थे। ये शिष्य भिन्न-भिन्न जातियों तथा धर्मों के थे।

स्वामी जी वैष्णव मत के साधु थे। आप बाल-ब्रह्मचारी सन्त थे। अपने साथ सदा एक कुल्हाड़ी रखते थे और अधिकतर उसकी ही पूजा करते थे। शायद उनका ज्ञान उसी कुल्हाड़ी में गुप्त था। इसी की पूजा करते-करते उन्हें निर्वाण भी प्राप्त हुआ। आपकी कुल्हाड़ी की घटना पूरे कश्मीर में प्रसिद्ध है। कहते हैं एक बार स्वामी जी बिज बिहाड़ा के एक पवित्र स्थान पर बैठे थे और अपनी कुल्हाड़ी की पूजा कर रहे थे। एक भक्त ने आकर स्वामी जी से प्रश्न किया—'स्वामी जी आप कुल्हाड़ी की पूजा क्यों करते हैं ? क्या यह कुल्हाड़ी इतनी उच्च है ?" स्वामीजी पहले मुस्कराये, बाद में कहा, "देखना चाहते हो तो देखो" स्वामी जी ने अपनी कुल्हाड़ी दूर से ही एक बड़े पत्थर पर फेंक दी।

आश्चर्य की बात है कि उनके हाथ में कुल्हाड़ी उसी प्रकार मौजूद रही जिस प्रकार पहले थी और दूसरी कुल्हाड़ी पत्थर में फंसी रही। इस घटना के आधार पर कश्मीर भर में कश्मीरी भाषा में यह मुहावरा लोकोक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गया, "शेंकरन्य मकच ह्य ुव" अर्थात् शंकर की कुल्हाड़ी की भांति अटल।

दूसरी घटना इस प्रकार है। श्रावण मास था। श्रावण पूर्णिमा के दिन उत्सव था। हज़ारों लोग श्री अमरनाथ जी की यात्रा को जा रहे थे। श्री शंकर महादेव के जन्म दिवस पर उनके दर्शनार्थ ही लोग श्री अमरनाथ जी की यात्रा को गए हुए थे। स्वामी शंकर राजदान अपनी ही कुटिया में बैठे थे। उस बार अमरनाथ के सारे इलाके में मूसलाधार वर्षा हुई। वहां वर्षा का तूफान आ गया था। लोगों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कई लोग पानी में बह गए और मर गए। स्वामी जी को अन्तर्ज्ञान से ही सब कुछ मालूम हो

गया । वे कुटिया की निचली मंज़िल में समाधि लगाए बैठे । ऐसा तो वहां उपस्थित भक्तों का विचार था । परन्तु स्वामी जी श्री अमरनाथ जी की पवित्र गुफा के सामने समाधि लगाए प्रकट हुए । और अपनी तपस्या में तब तक लीन रहे जब तक वर्षा रुक न गई । लोगों की चिन्ता दूर हुई । सुहाना मौसम फिर से हर ओर छा गया । बहुत सारे यात्रियों ने स्वामी जी के दर्शन किए । आकाश निर्मल हो गया । अच्छी धूप निकल आई । बादलों का नाम तक न रहा । अब यात्री प्रसन्नचित्त अपने-अपने घरों को हो लिए । स्वामी जी भी अकस्मात् गुफा के सामने से अदृश्य हो गए । जब श्रीनगर के यात्री श्रीनगर लौटे, कई यात्री स्वामी जी के दर्शन के लिए उनके आश्रम में आ गए । प्रणाम करने के पश्चात् पूछा —"महाराज ! आप यात्रा से कब लौटे ? रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई । क्या आप कुशलपूर्वक वापिस पहुंचे । महाराज ! आपकी ही कृपा से हमारी जान बची । यदि आप दया न करते तो शायद कोई जीवित न लौटता ।" जब यह सारी बातें स्वामी जी के भक्तों तथा सेवकों ने सुनी तो उन्हें आश्चर्य हुआ । वे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे । आपस में कहने लगे ये यात्री क्या कहते हैं—स्वामी जी तो अमरनाथ गए ही नहीं । वे तो यहीं समाधि लगाए बैठे थे । उनसे न रहा गया तो यात्रियों से पूछा—"सज्जनो ! या तुम सपनलोक में थे—या हम पागल हो गए हैं । स्वामी जी तो पूर्णिमा के शुभ दिवस पर यहां ही समाधि लगाए बैठे थे ।" उन्होंने उत्तर दिया—"भाई, क्या कहते हो —वहां वर्षा का तूफान आया । लोग मरने लगे थे । यदि स्वामी जी गुफा के सामने तपस्या न करते तो कोई नहीं बच जाता । यह तो इनकी कृपा का फल है जो हम भी जीवित घर लौटे हैं ।" यह सुनकर सब भक्तों तथा शिष्यों ने स्वामी जी को बार-बार प्रणाम किया ।

1869-70 ई. की बात है कि बरतानिया सरकार ने एक अंग्रेज मिस्टर फोरसे को कश्मीर की देख-रेख के लिए भेजा था । वह थोड़ी देर यहां ठहर कर वापिस चले गए । 1875 ई. में इसी मिस्टर फोरसे के नेतृत्व में एक मिशन मध्य एशिया को भेजा गया । यह राजनीतिक मिशन कश्मीर के रास्ते से ही भेजा गया था । इस मिशन को महारानी विक्टोरिया के एक निकटतम सम्बन्धी ने ही नियुक्त किया था । मिस्टर फोरसे समस्त कश्मीर का पर्यटन करके लद्दाख की ओर बढ़ा जहां से उसको अतालीक गाजी के साथ उत्तरी तुर्किस्तान जाना था । कश्मीर सरकार को बरतानिया सरकार से यह आदेश

मिला था कि वह इस मिशन का हर प्रकार से सहयोग दे। इसके लिए प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध करें। इस मिस्टर फोरसे को अतालीक गाजी और याकूबबेग से भी मिलना था। महारानी विक्टोरिया को इस मिशन की बड़ी चिन्ता लगी रहती थी। जब फोरसे लद्दाख से चीनी सीमा के पर्वतों को देखने गया तो वहां के लोगों ने उसे अजनबी समझ कर बन्दी बना दिया। कई महीनों तक उसका कोई समाचार नहीं मिला। विलायत में इस बात पर बड़ा शोर मचा। भारत के वाईसराय को फोरसे का पता लगाने के आदेश दिए गए। उस युग में कश्मीर पर महाराजा रणवीर सिंह राज्य करते थे। भारत के वाईसराय ने महाराजा रणवीर सिंह पर बड़ा जोर लगाया कि फोरसे का शीघ्रातिशीघ्र पता लगाया जाये। महाराजा ने चारों दिशाओं में आदेश जारी किये और आदमी भेजे ताकि फोरसे की तलाश तुरंत की जाए। महाराजा ने इसका पता निकालने के भरसक प्रयत्न किये। महारानी विक्टोरिया बराबर पूछ-ताछ करती रहीं। बहुत सारे आफिसरों की नौकरी चली गई क्योंकि वे फोरसे का पता निकालने में असफल रहे। कई कर्मचारियों को दण्ड दिया गया। जब किसी भी प्रकार से कोई पता नहीं चला तो महाराजा को राजगद्दी छोड़ने की भी धमकी दी गई। एक दिन महाराजा अपने राजभवन में बड़े चिन्तित बैठे थे, तो किसी सेवक ने उन्हें स्वामी जी के आश्रम पर जाने की सलाह दी। महाराजा स्वामी जी के पास आए। विनय-प्रणय किया तो स्वामी जी स्वयं ही बोले—"वह खोया हुआ अंग्रेज अपने आप दस दिन के पश्चात् वापस आ जाएगा। ठीक वैसा ही हुआ। पूरे दस दिन बीतने पर फोरसे स्वयं श्रीनगर आ गए। महाराजा से उसने अपना सारा हाल सुनाया और कहा कि उसे लद्दाख के इलाके में कैद कर दिया गया था और आज से दस दिन पूर्व कश्मीरी तर्ज की पगड़ी बाँधे एक कश्मीरी पंडित ने उसे वहां आकर आजाद किया। कहते हैं यह ठीक वही दिन था जिस दिन महाराजा ने स्वामी जी के पास जा कर विनती की थी और उन्होंने उसे कहा था कि खोया हुआ अंग्रेज दस दिन के बाद स्वयं आएगा। स्वामी जी उसी समय अपने तपोबल से लद्दाख पहुंच गए थे और फोरसे को आजाद किया था। महाराजा फोरसे को स्वामी जी के पास ले गया और स्वामी जी को धन्यवाद दिया। जब फोरसे ने स्वामी जी को देखा तो आश्चर्य में पड़ गया। वह झट कह पड़ा—"यह वही कश्मीरी पंडित हैं जिन्होंने मुझे लद्दाख में कैद से छुड़ाया था। इस पर महाराजा और फोरसे दोनों स्वामी

जी के पैरों पड़े । इस घटना से स्वामी जी की प्रसिद्धि सारे भारत में फैल गई और इनका यश विलायत तक पहुंच गया ।

इसके बाद से महाराजा रणवीर सिंह तथा महाराजा गुलाब सिंह स्वामी जी के आश्रम में आया करते थे, कई-कई दिन वहां पर ठहरते थे और वापस जाने का नाम तक न लेते । वे दोनों महाराजा स्वामी जी के शिष्य बन गए । विक्टोरिया के दरबार से भी स्वामी जी को बार-बार प्रणाम भेजा जाता था । महाराजा रणवीर सिंह एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं और स्वामी जी के शिष्य होने के कारण स्वामी जी ने अपने रामायण के अन्त में यह पंक्ति लिखी है:—

(क.) संवत् पाँचताजी लेखन तय,
शारदा किरो सपुद पूर्ण ।
राज रणवीर ओस देश पालन तय,
सर्वात्मा वासुदेव पूर्ण ।।

(हि.) संवत 45 का समय था । शार्दा लिपि में रामायण पूरा लिखा गया था । उस समय राजा रणवीर सिंह राज करते थे जो सर्वात्मा वासुदेव समान थे ।

एक बार राजा रणवीर सिंह अपने एक सेवक और बड़े फौजी जरनैल को साथ लेकर स्वामी जी के पास गए । स्वामी जी के आश्रम में चाय तैयार थी । इसलिए सबको पिलाई गई । सब ने बड़ी उत्सुकता से यह चाय पीकर आनन्द लिया । स्वामी जी का एक सेवक राम जी कौसी के प्याले में गर्म उबलती चाय लेकर फौजी जरनैल के पास गया । अकस्मात् यह उबलती चाय फौजी जरनैल के कन्धे पर गिर पड़ी । और वह जल गया । इस तीक्ष्ण तथा तीव्र जलन को वह बड़ी कठिनाई से सहता रहा क्योंकि महाराजा के सामने वह यह बात कहने का साहस ही नहीं कर सका । परन्तु स्वामी जी यह सब जानते थे । वे अपने कन्धे का बराबर जोर-जोर से मलते रहे जब तक फौजी जरनैल के कन्धे का दर्द तथा जलन दूर न हुई । परन्तु स्वामी जी के कन्धे पर जलने के दाग प्रकट हुए । जो कई दिनों तक बराबर रहे । इस सारे वृत्तांत को फौजी जरनैल ने बता दिया ।

कहते हैं एक दिन महाराजा ने अपनी फौजी अफसर को स्वामी जी के

पास आमों का बड़ा टोकरा भेंट करने के लिए भेजा। जब फौजी अफसर आमों का टोकरा स्वामी जी के पास लाया तो स्वामी जी ने झट कहा—"ये आम जूठे हैं। इनको मेरे सामने से उठाओ।" फौजी अफसर को आश्चर्य हुआ, मन ही मन कहने लगा—"महाराजा ये आम बड़ी सुरक्षा से ले आया हूं। अशुद्ध कैसे हो गए।" परन्तु मुंह से एक शब्द भी नहीं कहा। स्वामी जी ने पूछा—"कितने आम थे?"—अफसर ने कहा—"महाराजा, हमने इन्हें गिना नहीं, ज्यों के त्यों आपके सामने पेश किये।" स्वामी जी बोले—"क्या इनमें से कोई आम कम नहीं हो गया था?" फौजी अफसर ने अपनी गलती स्वीकार की, उसने रास्ते में चलते-चलते इनमें से एक आम किसी को दिया था। जब उसने अपनी गलती मान ली और क्षमा के लिए विनती की तो वह आम अपने आप स्वामी जी के हाथ में आ गया। तब स्वामी जी ने वह भेंट स्वीकार की।

इसी प्रकार महाराजा ने एक बार योग्य अंग्रेज इन्जीनियर को स्वामी जी के आश्रम पर भेजा। वे स्वामी जी के लिए एक बड़े भवन का निर्माण करना चाहते थे। जब अंग्रेज इन्जीनियर और उसके साथ आए हुए नौकर मजदूर भवन के लिए जगह को समतल करने तथा पैमाईश करने लगे तो स्वामी जी के किसी सेवक ने यह संदेश स्वामी जी को दिया। तो स्वामी जी बड़े क्रुद्ध हुए और स्वयं कुटिया से बाहर आकर इन्जीनियर को खूब रोका-टोका। महाराजा को संदेश भेजा कि "यदि महाराजा को इस कुटिया में आने में शर्म आती है तो महाराजा को इस कुटिया में आने की तकलीफ नहीं करनी चाहिए।" वे अपने आपके साथ कहते रहे—"महाराजा ने मेरी बस्ती उजाड़ने के लिए इन्जीनियर भेजे—मेरी बस्ती खराब करने के लिए है।"

इन्जीनियर अपने आदमियों को लेकर वापस महाराजा के पास गया और उन्हें स्वामी जी का संदेश सुनाया; साथ ही सारे हालात कह सुनाए। सब समाचार सुनकर महाराजा दौड़ते-भागते हुए स्वामी जी के आश्रम में आ पहुंचे। स्वामी जी से बड़ी नम्रता से विनती की और क्षमा मांगी। इस बार भी महाराजा स्वामी जी की कुटिया में कई दिन रहे और कश्मीरी तरीके से सब-कुछ किया। कश्मीरियों की तरह खाना खाते और चाय इत्यादि पीते रहे। इस बीच स्वामी रामजुव, जिसे स्वामी जी का बेटा ही माना जाता था, को सरकारी नौकरी पर लगाना चाहते थे। क्योंकि रामजुव ने बड़ी सेवा की थी। उन्होंने स्वामी जी से इस बारे में कहा। पहले स्वामी जी नहीं माने, बाद में महाराजा के

अनुरोध पर स्वामी जी ने शर्त रखी कि रामजुव का वेतन केवल इतना ही हो कि वह केवल अपना पेट पाल सके, बस ।

यहां यह प्रश्न उठता है कि यह रामजुव कौन था । यह किस तरह इनका बेटा बन गया था । स्वामी जी तो स्वयं बाल ब्रह्मचारी थे । क्या यह सचमुच ही स्वामी जी की सन्तान थी । सुना था कि यह रामजुन राजदान थे । इसे स्वामी जी ने गोद लिया था । यह बात स्वामी जी के ही एक शिष्य स्वामी नारायण जुव गंजू ने बताई थी जो रैणावारी के निवासी थे । वे एक महान् सन्त थे । श्री एम. के. रैणा जी ने स्वामी नारायण जुव गंजू से स्वामी शंकर राजदान से सम्बन्धित बहुत सारी घटनाएं सुनी थीं और एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की थी । उन्होंने ही उन्हें रामजुव राजदान का पूरा परिचय इस प्रकार दिया था । वार्ता इस प्रकार है कि जब उस काल में स्वामी जी छत्ताबल आए थे । छत्ताबल मुहल्ले में एक विधवा रहती थी । उसका केवल एक बेटा था—वह इकलौता था । एक बार उसे चेचक का रोग लग गया और उसी कारण वह बेचारा मर गया । यह अवला विधवा रोते-रोते स्वामी जी के पास आई और उनसे विनती की । और कहा कि उसका इकलौता बेटा अन्तिम निद्रा में सोया पड़ा है । उसे किसी भी प्रकार जगाइए । नहीं तो वह बेचारी क्या करेगी । उसका आखिर आसरा जो लुट रहा था । बहुत प्रार्थनाओं के बाद स्वामी जी ने कहा, 'यदि यह लड़का जाग गया भगवान की कृपा से तो इसे मेरे पास ही रहना होगा । क्या यह मानती हो' । मां की आत्मा का क्या कहना, उसने यह शर्त मान ली । स्वामीजी ने उस पर अपनी पूजा का जल छिड़का तो लड़के ने आंखें खोलीं । स्वामी जी ने ही उसका नाम रामजुव रखा । बढ़ते-बढ़ते वह भी एक गृहस्थ साधू बन गए । इस बात के बहुत से प्रमाण मिले हैं । स्वामी जी अधिकतर रामभक्ति में मस्त रहते थे और रामभक्त ही थे भी। इसीलिए इस लडके का नाम भी रामजुव ही रखा था। कहते हैं कि रामजुव भी महापुरुष थे । पंड़ित और विद्वान् थे। विद्वान होने के साथ-साथ वह राजनीतिज्ञ भी थे । । वह धीरे-धीरे सरकार का बड़ा कर्मचारी बन गया था । वह पहला कश्मीरी पंडित था जो मिलिट्री के सेक्रेटरी पद पर पहुंचा था । उसके बाद यह पद एक अंग्रेज मिस्टर चम्बरलिन को दिया गया था । और रामजुव राज्य के सबसे ऊंचे पद पर रहा । वही पहले कश्मीरी था जिसको वायसराय के दरबार में एक प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया था । वे महाराजा रणवीर सिंह के छोटे बेटे राजा अमरसिंह के परामर्शदाता भी रहे थे ।

जब 1931 विक्रमी में स्वामी जी को निर्वाण प्राप्त हुआ, तो स्वामी जी की समाधि, पर उनकी स्मृति में महाराजा रणवीर सिंह ने एक मंदिर का निर्माण कराया जिसका नाम 'रत्नज्योति' मंदिर कहा जाता है। "रत्न-ज्योति मंदिर" नाम—कारण स्वामी जी के लड़कपन में तेल के बिना दीये का अपनी दृष्टि से ही जलाकर रखने की घटना का प्रतीक है। यह मंदिर छत्ताबल में दानावारी नाम की गली में सुरक्षित है। इस मंदिर में स्वामी जी के पवित्र वस्त्र इत्यादि दर्शनों के लिए रखे गए हैं। स्वामी जी की धूनी का भस्म अभी तक सुरक्षित है। इस मंदिर में महाराजा रणवीर सिंह, महाराजा प्रताप सिंह और महाराजा हरी सिंह भी माथा टेकने आया करते थे। मंदिर में उनके वस्त्रों के अतिरिक्त उनकी कुल्हाड़ी, खड़ांव और ठाकुरद्वार मौजूद हैं। इस मंदिर के खर्च इत्यादि के लिए महाराजा रणवीर सिंह ने मनिगाम (गांदरबल) में 250 कनाल ज़मीन जागीर के तौर रखी थी जो कि मदिर का लंगर चलाने और इस मंदिर के दायादों के निर्वाह के लिए दिया था। यहां वर्ष में दो महायज्ञ रचाये जाते थे। हजारों लोग इन यज्ञों में सम्मिलित होकर लाभ उठाते थे। धर्मार्थ ट्रस्ट भी मंदिर की मरम्मत तथा इसकी देख-रेख का काम करता था। दीप के लिए तीस रुपये नियत थे। धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से ही एक पुजारी भी नियुक्त था। कहते हैं यह पुजारी भी एक महापुरुष थे। यह कन्याकदल के श्री विशम्भर बाबू थे। वह प्रात: पांच बजे से पहले ही इस मंदिर में पूजा करने आते थे। वह प्रति वर्ष इसकी मरम्मत इत्यादि करते थे। परन्तु उस पुजारी के स्वर्ग सिधारने के पश्चात, मंदिर की मरम्मत इत्यादि का काम स्वामी जी के पोते तथा उनके बच्चे ही करते रहे और करते हैं। मंदिर की पूजा भी खुद ही करते हैं। परन्तु महाराजा हरि सिंह का शासन खत्म होने के साथ ही यह क्रम टूट गया। जागीर की जमीन भी लोग खा गए। स्वामी कशि काक मनिगांम के जागीर का एक काश्तकार था। अन्त में काश्तकारों ने उस सारी जागीर को हड़प लिया जिसका मुकदमा अभी भी अदालत में चल रहा है। यह था वृत्तान्त जो खोज करने पर मालूम हुआ है।

कुछ नई घटनाएं—

स्वामी जी के वंशज इस मंदिर की पूजा बराबर करते हैं और उस 'रत्न ज्योति' को बराबर जलाते रहते हैं जो कभी बुझने न पाई। यह मंदिर श्रीनगर के पश्चिम में स्थित है। अभी भी यहां मुसलमान, हिन्दू तथा सिख सभी आते हैं।

यहां आकर सभी अपनी मुरादें पाते हैं क्योंकि छत्तावल के निवासी कहते हैं कि स्वामी जी की कृपा से ही यह उजाड़ जगह इस प्रकार उन्नति करके अच्छा नगर बन गया है। मंदिर सदा सर्वदा खुला रहता है और प्रत्येक भक्त तथा प्रेमी यहां अपने धर्म के अनुसार पूजा-पाठ करते हैं।

लोगों की श्रद्धा का हाल यूं है कि श्री एम. के. रैणा मंदिर में एक बार बैठे थे कि एक पड़ोसी मुसलमान रोते-रोते मंदिर में आया और कहा कि उसकी आठ वर्ष की बेटी सख्त बीमार है, मृत्युशय्या पर है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। आज रात को उसे सपने में स्वामी जी ने आकर खैरात करने के लिये कह दिया और यही कहने वह आया है। उन्होंने मांस की बलि देने को कहा है। पहले तो रैणा साहब के घर वाले नहीं माने क्योंकि स्वामी जी पक्के वैष्णव थे तथा वहां मांस की बात तक नहीं होती थी। बाद में रैणा साहब ने उसकी दशा को देखकर कहा कि जाओ, जैसे स्वामी जी ने कहा है वैसे ही करो। परन्तु मंदिर से जरा दूर ही करना। वह प्रसन्नता से फूले न समाया और उसने अपनी धर्मविधि के अनुसार ऐसा ही किया और दूसरे ही दिन उसकी बेटी ठीक हो गई। लोगों में यह बात बहुत प्रसिद्ध हो गई। और भी लोगों में श्रद्धा बढ़ गई।

दूसरी एक घटना इस प्रकार है कि रैणा साहब के छोटे भाई ने स्वामी जी का चित्र अपने मित्र मुसलमान चित्रकार को बड़ा बनाने के लिए दिया था। जब उसने यह चित्र बनाया तो ब्रुश का एक बाल स्वामी जी के गाल पर चिपक गया। जो चिपक कर ही रह गया जिसे हाथ से उठाया नहीं जा सका तो विवश होकर चित्रकार ने ब्लेड से उसे उठाया तो सपने में स्वामी जी ने उसे कहा कि यह देखो मेरे गाल को जख्मी कर दिया। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था। चित्रकार ने देखा कि स्वामी जी के गाल पर जख्म लगा था। यह कहते-कहते ही सपना टूट गया।

रैणा साहब तथा उसके मित्र तथा घर वाले सभी इस मंदिर की पूजा-पाठ तथा देख-रेख में तन्मयता से लगे हुए हैं। वे चाहते हैं कि स्वामी जी की कृतियों (रामायण जो तीन भाषाओं में लिखे हैं) को प्रकाशित करें।

ये रामायण 1. संस्कृत शारदा लिपि में, 2. हिन्दी देवनागरी लिपि में,

3. कश्मीरी-फारसी लिपि में लिखी हैं। हिन्दी देवनागरी लिपि वाला रामायण कश्मीरी विश्वविद्यालय की एशियन आर्ट गैलरी में सुरक्षित है। और शेष दो रामायण मंदिर के प्रबंधक श्री रैणा के पास हैं।

इन तीनों के छापने के विषय में श्री रैणा ने डाक्टर फारुक अब्दुल्ला, मुख्यमन्त्री, जम्मू-कश्मीर, और डाक्टर कर्ण सिंह जी से सहयोग तथा सहायता करने के लिए कहा है। आशा है कि उनके सहयोग से ये तीनों ही प्रकाशित हो जायेंगे।

स्वामी शंकर राजदान के जीवन का वृत्तान्त पढ़कर मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। और परमात्मा के चमत्कारों को देखकर वह अपने इस दुर्बल एवं क्षणभंगुर जीवन को तुच्छ मानने लगता है और परमात्मा की खोज में लग जाता है।

स्वामी जी ने रामायण शिवरात्रि (हेरथ) पर स्वयं लोगों के सामने सुनाया था —वह स्वयं कहते हैं:—

(क.) शिवरात्रि दोह सम्पूरण तय,
प्रकाश रामायन कोर शंकर।।

(हिन्दी) अर्थात शिवरात्रि के दिन शंकर ने रामायण सम्पूर्ण किया।

स्वामी जी की लीलाएं हिन्दू घरानों में शादी-ब्याह के अवसरों पर खूब गाई जाती हैं। परन्तु लोगों ने अज्ञानवश इनको दूसरों की कृति माना है। यह एक लीला नमूने के लिए दी जा रही है।—

(क.) **लीला**

पोश फलिम पोशि थरे,
करयो गूर गूरो ।
सग दिमस हेरिमि कले,
तमि सत्य पोश फोले ।। 1।।

यलि ज़ायास माजे,

दिच़नम दोद् पाजे ।

सीवा कर मे बुजे

करयो गूर गूरो ॥ 2 ॥

तथ च़ास वारि अन्दर

कम कम द्रायि गन्ह्वर ।

श्रेप्य बेयि मेचि़ अन्दर,

करयो गूर गूरो ॥ 3 ॥

मेच़ बेयि मेचि मेच़य,

हेरि बोन आसु मेच़य ।

मेचि़ मंज़ सारि मेच़य ,

करयो गूर गूरो ॥ 4 ॥

सीव कर खावंदस,

धव रोज्यस वोदस,

मिलवी दोद कंदस,

करयो गूर गूरो ॥ 5 ॥

बोम्बुर छुय छाल दिवान,

खंटिथ छुय डाल निवान ।

प्राण रटिथ अथि यिवान,

करयो गूर गूरो ॥ 6 ॥

कव छुख वति रावान,

समसार तबलावान ।

लूर छय न छुख हावान,

करयो गूर गूरो ॥ 7 ॥

गाफ़िलो गछ़ बेदार,

कनि ज़ान मोहर तय ह्यार

कंडय ज़ाल मुह् सम्सार

अर्थात : 1. शाखा में बेल में फूल खिले हैं। मैं तुम्हें झूले में झुलाऊं। मैं इसको ऊंची लगन से सींचूं, उससे इसमें फूल खिलेंगे।

2. जब मैं अपनी माता की कोख से जन्मा तो मेरी माता ने मुझे बहुत-सा दूध पिलाया। मैं ने उस बूढ़ी मां की सेवा की। मैं आपको झूले में झुलाऊं।

3. इस मिट्टी में से कितने ही फूल खिले, कितने अच्छे लोग उत्पन्न हुए। परन्तु फिर इस मिट्टी में मिल गए। मैं आपको झूले में झुलाऊं।

4. मिट्टी में से मिट्टी ही मिले, ऊपर-नीचे मिट्टी ही मिट्टी है। मिट्टी से मिट्टी ही निकलेगी। मैं आपको झूले में झुलाऊं।

5. तू अपने पति की अच्छी सेवा कर जिससे उसके मन में तुम्हारी याद रहे और उसका शुभ फल तुम्हें आगे मिले। मैं आपको झूले में झुलाऊं।

6. भंवरा तुम्हारे इर्द-गिर्द मंडरा रहा है और आंख-मिचौनी खेलता है। प्राण लेकर वही प्रकट होता है। मैं तुम्हें झूले में झुलाऊं।

7. तुम क्यों रास्ते से भटक रहे हो और इस दुनिया को गुमराह करते हो जबकि तुम्हारे पास कोई छड़ी नहीं लेकिन झूठ-मूठ दिखाने का प्रयत्न करते हो। मैं तुम्हें झूले में झुलाऊं।

8. अरे गाफिल ! तुम जागो, तुम रुपयों और धन-दौलत को पत्थरों के समान जान लो। यह संसार मोहरूपी कंटीली झाड़ी जान लो। मैं तुम्हें झूले में झुलाऊं।

सु–कविता के पक्षधर : मैथिलीशरण गुप्त

• निर्मल विनोद

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रणीत काव्य मानवोचित गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु अनिवार्य सद्भाव को किसी भी मूल्य पर जीवित रखने की प्रबल आकांक्षा से अनुप्राणित सत्कवि का सत्प्रयास है। वे सु-कवि थे और उनकी कविता सु-कविता।

इसे हिन्दी आलोचना की विडम्बना ही कहा जायेगा कि जहां कुछ 'स्वनाम धन्य' आलोचक उन्हें सिरे से कवि ही नहीं मानते···और इसी आधार पर उनकी कविता को राष्ट्र-भारती के भण्डार से पूर्णरूपेण निष्कासित करने का 'सत्परा-मर्श' दिये बिना नहीं रहते, वहीं कुछ एक 'उदारतावश' उन्हें कवि मानने के लिए तैयार तो होते हैं, परन्तु 'कवि' शब्द से पूर्व 'तुक्कड़'—विशेषण—जोड़ देना अपना परम-धर्म समझते हैं। इसके इतर' अनेक विद्वान उनका स्मरण खड़ी बोली की कविता को ठोस आधार प्रदान कर पाने वाले महान कवि के रूप में करते हैं। रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में, "निराला और दिनकर और जाने कितने कवियों की जाने कितनी कविताओं में 'भारत-भारती' की अनुगूंज समायी हुई है। और यह अकारण नहीं है। बहुत कम रचनाओं को इस तरह भविष्य के कवियों का सन्दर्भ-ग्रन्थ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।···बहुत कम रचनाओं को इस तरह कवि के जीवन काल में ही भाषा की तरह 'श्रुति' और 'स्मृति' बन जाने का अवसर मिलता है।"

यद्यपि गुप्तजी की काव्य-यात्रा के अनेक स्थल ऐसे भी हैं जहां यह लगता है कि वे जो कुछ भी कह रहे हैं, सायास-सप्रयत्न कह रहे हैं, तथापि हमें यह निस्संकोच स्वीकार करना होगा कि सयत्न साधना से वे कहीं भी छोटे नहीं

पड़ते। ऐसा नहीं कि वे कलात्मकता की कसौटी पर खरी उतरने वाली कविता कर पाने में असमर्थ थे; उनका कवि यथेष्ठ प्रतिभाशाली था।

'चारुचन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही थीं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी, अवनि और अम्बर-तल में'

जैसी काव्य पंक्तियों से भी सुन्दरतर कविता रच सकने का दम-खम उनमें था, परन्तु उन्हें कलावादियों ही को लुभा सकने योग्य काव्य पथ पर—समसामयिक ज्वलन्त प्रश्नों की ओर से आंख-कान मूंदे, नाक की सीध में—चलते चले जाने में कोई औचित्य नहीं दिखायी पड़ा। युगीन परिस्थितियों की मांग का आदर करते हुए विशिष्ट राष्ट्र धर्म भावना के विस्तार सरीखे बड़े उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त त्याज्य मार्ग को निस्संकोच बदल लेने की अद्भुत समझ उनमें भली-भांति विकसित हो चुकी थी। उनके लिए कविता कोरी बौद्धिक विलासिता-सामग्री न होकर एक 'मिशन' थी। वे मात्र कलात्मकता के पक्षधर नहीं थे—'मानते हैं जो कला के अर्थ ही/स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।' वे बहुत बारीक कातने वाले कलाकार न सही, पर बड़े कवि अवश्य थे। वस्तुतः वे कोरे 'सुन्दरम' की अपेक्षा 'सत्यम्-शिवम्' तथा लोक-मंगल की उदात्त भावना से प्रेरित होकर काव्य-धरातल पर उतरे और अपने आग्रह-विश्वासों के बलबूते, भाल ऊंचा किये अंगदवत् खड़े रहे। वे 'केवल मनोरंजन' के कवि न होकर उचित उपदेश का मर्म हृदयंगम करवाने वाले राष्ट्र-समाजोन्मुख कवि-पुंगव थे।

गुप्त जी का कवि-कर्म निरुद्देश्यता के कुहासे से आच्छादित न होकर सोद्देश्यता की खुली-खिली-निखरी धूप की भांति चमकीला और पारदर्शी है। उनकी कविता निष्क्रियता के अंध-कूप में नहीं धकेलती, अपितु सामाजिक-राजनैतिक स्तर पर सक्रिय भागदारी के लिए सत्प्रेरणा देती है। उनकी दृष्टि में सद्भाव जीवित रखने, सत्प्रेरणा दे पाने तथा अन्ध काराओं से मुक्ति दिला सकने में सक्षम-समर्थ कविता ही श्रेष्ठ कविता अथवा सु-कविता है। उनकी मान्यता थी—

'है अन्ध-सा अंतर्जगत, कवि रूप सविता के बिना,
सद्भाव जीवित रह नहीं सकते सु-कविता के बिना।'

गुप्त जी अपने समसामयिक समाज से गहनतर स्तर पर सम्पृक्त थे। इनके मन में अपनी कविता को लेकर कोई भ्रम नहीं था। लगभग पैंसठ वर्ष की अवस्था में अपने कवि-कर्म से सम्बन्धित उनकी एक टिप्पणी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—"मेरा कार्य वर्तमान का था और शायद वह मेरे जीवन के साथ समाप्त भी हो जाय।"

'जो पीछे आ रहे उन्हीं का मैं आगे का जय-जयकार'—कहने वाला विनम्र कवि अपने वर्तमान के प्रति किस सीमा तक समर्पित रहा, सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। इस संदर्भ में प्रेमचन्द की प्रथम पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में आयोजित एक समारोह में' उनका यह कथन भी ध्यातव्य हैं-"मैं किसी भी क्षण अपने युग को नहीं भूला हूं। हमारी आज की रचनाएं आज का ही काम चला दे तो यही क्या थोड़ा है? कल के लिए आज की उपेक्षा करके ही हम विशेषकर मेरे जन, कौन अमर हुए जाते है?" निस्सन्देह, वे अपने युग की चिन्ता करने वाले कवि रहे हैं। वे जिस देश काल परिस्थिति की उपज थे, उसका चित्रण इनके काव्य में बखूबी हुआ है। इनकी उंगलियां युगीन घटना-चक्र की नब्ज पर थीं।

पुरानी कहावत हैं—यथा राजा तथा प्रजा, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि हमें शासन हमारी योग्यता के अनुरूप ही प्राप्त होता है। तत्कालीन दुर्दशा के लिए केवल अंग्रेजों को ही दोष न देकर, वे आत्म-निरीक्षण करते हुए, हमें इस कटु-यथार्थ के समक्ष ला खड़ा करते हैं—"न्यायालयों में भी निरन्तर घूस खाते हैं हमीं / रक्षक पुलिस को भी यहाँ भक्षक बनाते हैं हमीं।'

वे एक सजग कवि थे। उन्हें अपने समाज की धारणाओं-मान्यताओं-अपेक्षताओं-विषयक पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि वे जनता के गले का हार बन सकने···बल्कि अन्तस्तल में जा बैठने योग्य कविताएं लिख सके। वैसे कविता की अमरता के लिए इससे बड़ा कोई गुण हो भी क्या सकता है?... और यही वह गुण है जिनसे इनकी कविता को अमर बनाया। उनका काव्य जन-गण मन की अपनी चीज है—वर्णन-प्रधान, नैतिक-मूल्य-बोध-युक्त एवं उद्बोधनात्मक—

> 'बैठे हुए हो व्यर्थ क्यों? आगे बढो, ऊँचे चढो,
> है भाग्य की क्या भावना? अब पाठ पौरुष का पढो।
>
> × × ×
>
> प्राचीन हों कि नवीन, छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी
> बन कर विवेकी तुम दिखाओ, हंस जैसी चातुरी।'

मुन्शी प्रेमचन्द का कथन है—"हम साहित्य को केवल विलासिता की वस्तु नहीं समझते । हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो —जो हममें गति संघर्ष, और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" गुप्तजी की कविता सुलाती नहीं, जगाती है।

'आओ विचारें साथ मिलकर ये समस्याएं सभी' और 'समदु:खिनी मिले तो दु:ख बंटे' जैसी काव्य-पंक्तियां देने वाले गुप्तजी की कविता नितान्त वैयक्तिक न होकर सामाजिक सरोकारों की कविता है। वे गजदन्ती मीनारों में कैद होकर रह जाने वाले कवि नहीं थे। इनकी दृष्टि में श्रम एवं कर्मठता ही महत्वपूर्ण है; इसलिए वे एक समतापूर्ण आदर्श समाज के निर्माण को तरजीह देते रहे। मूलतः वे गांधीवाद में मान्य कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था रखने वाले सहज कवि थे और उन्होंने 'लव आफ लेबर' को महत्व दिया जिसके बिना समतापूर्ण समाज रचना हो ही नहीं सकती। वे 'साकेत' में सीता से कहलाते है—

'औरों के हाथों यहां नहीं पलती हूं,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूं।

× × ×

तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में ?
आओ हम कातें-बुने, काम की लय में।'

गुप्तजी के काव्य में स्वावलम्बन एवं आत्म-गौरव के भावों की अभिव्यंजना बहुत सुन्दर ढंग से प्राप्त हुई है। जहाँ उन्होंने 'औरों की आशा है त्याज्य/जहाँ नहीं वह वहीं स्वराज्य/है आदान एक अपमान/कर न सके यदि हम प्रतिदान अथवा 'किन्तु जिलाता है निजश्वास/रक्खो निज बल पर विश्वास में स्वावलम्बी और आत्मविश्वासी बनने पर बल दिया है वहीं, वे राष्ट्र को प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा 'आलोच्य है/अब भी हमारी अस्ति है/यद्यपि अवस्था/शोच्य है' में तत्कालीन शोचनीय दशा की समीक्षा की ओर प्रवृत्त करने के अतिरिक्त आत्म गौरव का संस्कार भी देते है। डॉ. इकबाल की प्रसिद्ध पंक्ति 'कुछ बात कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी' में भी यही बात झलकती है।

गुप्तजी को राष्ट्र कवि के रूप में सम्मानित किया गया तो इसलिए कि उनका सर्जक मन राष्ट्रीय जन-जीवन से सुसम्बद्ध रह कर, राष्ट्रीयता के संस्कार को सुपुष्ट करने सरीखे महत् उद्देश्य की पूर्ति-हेतु रचना कर्म में प्रवृत्त रहा। उन्होंने ऐतिहासिक-पौराणिक आख्यानों की समृद्ध परम्परा से नाता जोड़ा, परन्तु लकीर पीटने जैसी चूक करने से बचते रहे। उनके राम न तो वाल्मीकि के राम हैं और न ही तुलसी के। समसामयिक परिवेश में पूर्व प्रचलित आख्यानों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता क्या और कैसे ?—जैसे कितने ही प्रश्नों से वे निरन्तर जूझते रहे।

उनकी प्रमुख चिन्ता भारत को स्वतन्त्र देखने की रही है। अंग्रेज को भारत छोड़ने में आनाकानी करते देख वे मानो फट पड़ते हैं—

'यदि सचमुच तुम योग्य उदार
तो पावे हम निज अधिकार'

अंग्रेज ने निष्कंटक राज्य करने के लिए 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपना रखी थी। वह हिन्दू-मुसलमानों के मनों में विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित कर, अपना उल्लू सिद्ध करना चाहता था। राष्ट्र-कवि उसकी इस कु-चाल से अभिज्ञ थे। हमारी आपस की लड़ाई से कोई तीसरा लाभ उठा रहा है, यह बात उन्हें व्यथित किये डालती थी। उनकी कविता में भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर बन पड़ी है। वैर-बुद्धि शिवत्व विरोधिनी है। उनका कहना था कि विविध सुमनों से माला का निर्माण होता है; साम्प्रदायिक भेद से राष्ट्रीय एकता नहीं मिटनी चाहिए। जहां उन्होंने हिन्दुओं को इतिहास के अप्रिय प्रसंगों को भुला कर एक नया अध्याय आरम्भ करने के लिए 'पीछे हुआ सो हो गया / अब सामने देखो सभी' कहा, वहीं, मुसलमानों को वस्तु-स्थिति समझने तथा स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा दी—'बीती अनेक शताब्दियां जिस देश में रहते तुम्हें / क्या लाज आवेगी उसे अपना 'वतन' कहते तुम्हें?' सच तो यह है कि वे दोनों को सचेत कर रहे थे क्योंकि एक ही नौका के सवार होने के नाते दोनों के हित परस्पर सम्बद्ध हैं वे दोनों के संगठित रहने तथा उन द्वारा स्नेह-सौहार्द पूर्ण वातावरण बनाये रखने पर बल देते रहे। उनके अनुसार, यदि श्रेय निहित है तो हेल-मेल में ही। उनके लिए देश-हित सर्वोपरि था—

'कोई काफ़िर, कोई मलेच्छ, हो तो होता रहे यथेच्छ।
हिन्दू-मुसलमान की प्रीति, मेटें मातृ-भूमि की भीति !'

गांधी-भक्त होने के नाते, वे अहिंसा में आस्था रखते थे—'हिंसा है पशुता का नाम / अविचलता है अपना काम / परन्तु उन्हें ज्ञात था—'है स्वर्गीय अहिंसा शुद्ध / किन्तु जगत हैं शुद्ध न बुद्ध।' उनकी मान्यता थी—'क्षमा कहां अक्षमता में है ?' इसलिए वे यह कहने पर भी विवश हुए—'करो धर्म-धन-जन का त्राण / देकर भी लेकर भी प्राण।' अपने उद्देश्य, स्वराज्य की प्राप्ति-हेतु वे किसी भी सीमा तक जाने के लिए तैयार थे—

'हम निश्चित हैं कृत-संकल्प
लेंगे क्या स्वराज्य से अल्प !'

उनकी कल्पना का स्वराज्य सब जनों के लिए मंगलमय—आदर्श राज्य—रामराज्य ही था।

राष्ट्र-कवि का राष्ट्र-प्रेम, उन्हें समस्त राष्ट्रवासियों के हित-चिन्तन के लिए प्रेरित करता रहा। उन्होंने स्त्री-शिक्षा, स्त्रियों की स्थिति में सुधार, भारतीय किसानों की दयनीय अवस्था, अछूतोद्धार आदि विषयों पर सहृदयता-पूर्वक लिखा। यही कारण है कि उनकी बे-बनावटी अन्दाज की कविता, सामाजिक के मन में, उसके अंगी—सम्पूर्ण समाज के प्रति सद्भाव जगाती है; उसे आन्तरिक स्तर पर अतीव आत्मीयतापूर्वक सुसंस्कृत करती है। वे सु-कविता के सच्चे पक्षधर थे।

कहानी केसर की

• पृथ्वीनाथ मधुप

कुंकुम, केशर अथवा केसर का वनस्पति शास्त्रीय नाम है—क्रोकस सैटिवस। यह आइरिस परिवार का पौधा है। संस्कृत में इसका एक और नाम 'काश्मीरज' है; जिससे प्रकट होता है कि भारत में केसर पर कश्मीर की प्राचीनकाल से ही इजारादारी है।

यों तो प्राचीन मिस्रवासी भी एक प्रकार के नकली केसर से परिचित थे; मगर असली केसर की खेती पुराने जमाने में एशिया माइनर के सिलीशिया, ईरान व कश्मीर में होती थी। कश्मीर में केसर की खेती पांपुर नामक गाँव में होती है। पांपुर (प्राचीन पद्मपुर, जिसे महाराजा ललितादित्य के मंत्री पद्म ने बसाया था) श्रीनगर-जम्मू राष्ट्रीय मार्ग पर श्रीनगर से सोलह किलोमीटर दूर है। पांपुर के अलावा कश्मीर के किश्तवाड़ में भी केसर की खेती होती है; लेकिन बहुत कम।

प्राचीन हिन्दू युग में कश्मीर में केसर की खेती काफी बड़े पैमाने पर होती थी, फलतः केसर का उत्पादन भी उसी अनुपात में होता था। यह बहुतों की आजीविका का साधन था और राज्य को इससे काफी आय होती थी। हिन्दू युग के बाद इसका उत्पादन काफी घट गया।

मुगलों के जमाने में केसर के उत्पादन की फिर वृद्धि हुई। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आईने अकबरी' में अबुल-फजल ने लिखा है कि उस जमाने के कश्मीर में 10-12 हजार बीघे भूमि में केसर उगाया जाता था।

अफगानों के समय में फिर इसके उत्पादन का ह्रास हुआ। डोगरा राजाओं ने इस ओर विशेष ध्यान दिया, विशेषत: महाराजा रणवीर सिंह ने।

बीच में अंग्रेजों के शासनकाल में तत्कालीन सेटलमेंट कमिशन वाल्टर आर. लारेंस ने अपनी पुस्तक 'द वैली ऑफ कश्मीर' में सन् 1887 में किये गए सर्वेक्षण के आधार पर लिखा था कि यहां 4,527 एकड़ भूमि में केसर की खेती की जा सकती है, लेकिन इसमें से केवल 132 एकड़ में ही केसर उगाया जाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसके उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। विदेशों में भी इसकी मांग बढ़ रही है।

केसर को हिन्दू मांगलिक द्रव्य मानते हैं। अनेक धर्म-प्राण हिन्दू अपने ललाट पर इसका तिलक लगाते हैं। पुराने जमाने में किसी अभियान पर निकलने से पहले हिन्दू केसर का टीका लगा कर निकलते थे। आज भी वह परम्परा काफी हद तक कायम है। यहां तक कि जब महात्मा गांधी ऐतिहासिक दांडी-यात्रा आरम्भ कर रहे थे, उनके माथे पर केसर का तिलक लगाया गया था। इसका प्रयोग दवाओं और सुगंधियों आदि में भी किया जाता है।

पांपुर में केसर की खेती कब और कैसे आरम्भ हुई इस सम्बन्ध में 'राज-तंरगिणी' में एक कथा मिलती है। महाराज ललितादित्य के समय (647-736 ई.) में पद्मपुर में एक प्रसिद्ध वैद्य रहते थे। उनका नाम था वागभट्ट। एक बार नागराज तक्षक नेत्र रोग से पीड़ित हो कर मनुष्य का रूप धारण करके वागभट्ट के पास इलाज कराने आये। बहुत दिनों के उपचार से भी कुछ लाभ न हुआ, तो वागभट्ट को सन्देह हुआ। उन्होंने तक्षक से उनकी असलियत पूछी।

जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका मरीज तो वास्तव में एक नाग है, तो उन्हें यह समझने में देर न लगी कि तक्षक की आंखों में लगाई गई औषधियां उसके मुख से निकलने वाली विषाक्त सांस के कारण ही निष्प्रभाव हो गई होंगी। वागभट्ट ने तुरन्त तक्षक की आंखों पर पट्टी बांध दी, ताकि जहरीली सांसों से आंखों का बचाव हो सके। तक्षक शीघ्र ही ठीक हो गया और उसने वागभट्ट को केसर की एक गांठ पारितोषिक के रूप में दी। वागभट्ट ने प्याज की जड़ जैसी इस गांठ को रोपा और इस प्रकार पांपुर में केसर की खेती की श्रीगणेश हुआ।

अबुल-फजल ने 'आईने अकबरी' में इस बात का उल्लेख किया है कि पांपुर के लोग केसर की खेती आरम्भ करने से पहले 'ज्यवन' (जयवन) नामक गांव के निकट निर्मल जल वाले 'तक्षकनाग' नामक एक बड़े कुंड की यात्रा करते हैं। आज भी अनेक लोग इस कुंड पर नागराज तक्षक की पूजा करने जाते हैं।

केसर की खेती ऊँची और समतल भूमि में होती है। इसकी खेती के लिए एक खास प्रकार की पीली मिट्टी की जरूरत होती है, जो हमारे देश में पांपुर में ही पायी जाती है। पहले जमीन को 5 × 5 फीट की वर्गाकार क्यारियों में बांटा जाता है फिर उसके चारों और एक फुट गहरी नाली खोदी जाती है। केसर की गांठ उन क्यारियों में चार इंच गहरी रोपी जाती है। सिंचाई की कोई खास जरूरत नहीं पड़ती। गांठ रोपने के बाद किसान को ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। न खाद-पानी ही देना पड़ता है। अलबत्ता जमीन की गोड़ाई जरूर दो-चार बार करनी पड़ती है, जिस में इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि गांठों को क्षति न पहुंचे। गांठों की रोपाई जुलाई-अगस्त में होती है।

केसर का पौधा काफी छोटा होता है—करीब छह इंच ऊंचा। इसके पत्ते घास जैसे होते हैं। अक्तूबर के मध्य में केसर के पौधों में फूल लगते हैं, जो दूर से देखने पर कुमुदिनी का आभास देते हैं। छह पंखुरियों (तीन बड़ी और तीन छोटी) वाले ये फूल अतीव मनोहर एवं बैंगनी रंग के होते हैं। शरदकाल की कुन-कुनी धूप में दूर तक फैले हुए केसर-पुष्पों को हेरते रहना बड़ा ही सुखद अनुभव होता है। कहते हैं कि कार्तिक पूर्णिमा की चांदनी में केसर पुष्पों को निहारने में विशेष आनन्द आता है।

कश्मीर की केसर-सुषमा ने केवल कवियों और लेखकों को ही प्रभावित नहीं किया अपितु धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठान भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। और तो और भक्त हृदय ने अपनी आराध्या महाशक्ति जगन्माता को भी 'कश्मीर कुकुंमप्रिया' कहा। कश्मीरी जनमानस में केसर ऐसे घुलमिल गया कि माता-पिताओं ने अपनी प्रिय बहू-बेटियों के नाम तक 'क्वरा' (केसर कुंकुम) तथा 'क्वंगुमाल' (केसर पुष्पों का हार) रख दिये। इतना ही नहीं

ब्याह-शादियों पर गाये जाने वाले कश्मीरी लोकगीतों में लोक-कवियों ने बिटिया को 'केसर-गाँठ' के नाम से अभिहित किया। बिटिया के विवाह के समय उसकी विदा-वेला में वधूपक्ष की कश्मीरी अंगनाएं वर एवं वरपक्ष को वधू के सौंदर्य एवं उसके सर्वगुण सम्पन्न होने का संकेत 'वनुवुन' (ब्याह-शादी पर गाये जाने वाले लोकगीत) की निम्न पंक्तियों द्वारा कराते हैं :—

य्यतिदिच् क्वंगुस्वोन्ड ततिनो तछिज़े
कूर हो रछिज़्यन लूकुहुन्द माल ।।

अर्थात—दूल्हे राजा एवं वरपक्ष जन ! हमने केसर की गांठ (अपनी प्यारी, सुन्दर तथा सर्वगुणसम्पन्न बिटिया) तुम्हें सौंप दी। घर जाकर इसे न खुरचना। पराई सन्तान लड़की का अच्छी तरह से ध्यान रखना। जरा सावधानी से इसे पालना-पोसना।

कश्मीरी लोकगीतों में केसर शब्द का प्रयोग सुन्दरता, स्नेह एवं गौरव आदि अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है। 'निकाहनामा' लिखते समय कश्मीरी मुसलिम महिलाएं दुल्हन को उसके मां-बाप के उसके प्रति स्नेह, उसके अपने सौंदर्य तथा उसके खानदान के गरिमामय होने का भान कराते हुए गाती हैं:—

निकाह छी लेखान सुतुरे
क्वंगुचे पतुरे तु अतुरे सूत्य ।।

"दुल्हनिया री ! तुम्हारे निकाहनामे की एक-एक पंक्ति केसर और इत्र घोल कर लिखी जा रही है।"

किसी ललना के रूप-लावण्य को अभिव्यक्त करना हो तो कश्मीरी में मुहावरा है 'क्वंग तिहिज्य हिश' याने पुंकेसर (केसर पुष्प के बीच की डंडियों) सरीखी।

केसर-कुसमों को तोड़कर धूप में सुखाया जाता है। फिर प्रत्येक पुष्प से तीन डंडियों (पुंकेसरों) को हाथ से अलग करते हैं। डंडियों का ऊपरी भाग लाल-नारंगी रंग का होता है और निचला भाग श्वेत । केसर का ऊपरी हिस्सा

'शाही जाफराकन' कहलाता है। और यही प्रथम श्रेणी का केसर है। निचला हिस्सा द्वितीय श्रेणो का केसर है, जो 'मोंगरा' या मोंगला कहलाता है।

'शाही जाफरान' तथा 'मोंगरा' चुनने के बाद फूलों को छड़ियों से धीरे-धीरे पीटा जाता है और पानी में डाला जाता है। जो हिस्सा पानी में डूब जाये, उसे फिर से धूप में सुखा कर पीटा जाता है और पुनः पानी में डाला जाता है। यह क्रम तीन बार दोहराया जाता है।

पानी में डूबे हुए केसर को 'निवल' कहते हैं। उक्त क्रम के दोहराने से घटिया किस्म की 'निवल' बनती है। पहली बार पीटने से प्राप्त निवल को तीसरी बार प्राप्त निवल से मिलाया जाता है और घटिया किस्म का केसर बनाया जाता है जो मोंगरा की अपेक्षा हल्के रंग एवं कम सुगन्ध वाला होता है। इसे लछा कहा जाता है। केसर की मिलावट को परखना बहुत मुश्किल क़ाम है। केवल बहुत अनुभवी एवं तेज नजर वाला आदमी ही मिलावट को परख सकता है।

माना जाता है कि केसर की गांठ रोपने पर उससे अधिक से अधिक दस वर्ष तक उपज होती है। लेकिन पांपुर के वृद्ध एवं अनुभवी केसर-उत्पादकों का कहना है कि एक बार की गांठ से चौदह वर्षों तक फसल ली जा सकती है। होता यह है कि पुरानी गांठ सड़ जाती है; और नई गांठ अपने आप ही पैदा हो जाती है।

केसर की बीज-गाठों को रोपने के लिए खास तरह की ढलुआ जमीन की जरूरत होती है। तीन वर्ष बाद बीज-गाठों को निकाल कर छोटी-छोटी वर्गा-कार समतल क्यारियों में रोपा जाता है। केसर की पैदावार बंद हो जाने पर उन खेंतों में आठ वर्षों तक गेहूं और जौ की खेती होती है।

विदेशों में स्पेन, फ्रांस, सिसली एवं ईरान में केसर की पैदावार होती है। स्पेन इसका सबसे बड़ा निर्यातक है। वहां अरबों ने इसकी खेती दसवीं सदी में आरम्भ की थी। बीच में कुछ समय लोग इसे भूले रहे। फिर क्रूसेडरों ने वहां इसका फिर प्रचलन किया। अंग्रेजी का 'सैफरन' शब्द अरबी के 'जाफरान' शब्द से निकला है।

अठारहवीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड की वालडन नामक जगह में भी इसकी खेती होती थी। कहते हैं इसकी गांठ एक यात्री त्रिपोली से छिपा कर वहां लाया था। यह वालडन लंदन से 44 मील दूर है और आजकल सैफरन वाल्डन के नाम से जाना जाता है।

केसर के मोहक रंग व सौरभ का कारण है उसमें रहने वाली क्रोसिन, क्रोसिटिन, कैरोटिन, लिकोपिन, जियाक्सैंथिन और विक्रोक्रोसीन नामक रासयननिक वस्तुएं तथा सुगन्धित तेल।

●●●

मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर के काम की जानकारी प्राप्त करने का आज मौका मिला है। यह काम गांधी जी के नाम पर हो रहा है और यह खुशी का मुकाम है।...

आज़ादी के बाद भारत में संविधान-सभा बनी। मैं भी उसका सदस्य था। इसमें फैसला हो गया कि हिन्दी को सारे भारत की राष्ट्रभाषा बनाया जाये। अतः हिन्दी ही सम्पर्क-भाषा का रूप लेकर रहेगी। मैंने मुसलमानों को यही मशवरा दिया कि ज़माने के साथ चलकर वह राष्ट्रभाषा को अपनायें और ज़बान को मजहब का रूप न समझें।

—शेख मुहम्मद अबदुल्ला

(29 मार्च 1970 के भाषण से)

भारत जैसे देश में जिसमें बहुत सी भाषाएं बोली जाती हैं, यह बहुत ज़रूरी है कि एक भाषा हो जो सब समझें, जो पूरे देश को बांधे रखे, हमने चुना है कि हिन्दी हो। हिन्दी को सबसे ज्यादा लोग समझते हैं, बोल पाते हैं। इसलिए हमने हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा, राजभाषा बनाने के लिये चुना है। खाली यह नहीं देखा कि बहुत लोग बोलते हैं या समझते हैं लेकिन हिन्दी का एक इतिहास भी है, गहराई है और हमारी कोशिश है कि देश में सब लोग हिन्दी बोलने लगें।

—प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी